बुद्धधर्म के उपदेश

भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक —

महाबोधि सभा, सारनाथ,

वाराणसी

प्रकाशक —
भिक्षु एम० सङ्घरत्न
मन्त्री,
महाबोधि सभा, सारनाथ,
वाराणसी

मूल्य २ ५० न० पै०

मुद्रक —
याज्ञवल्क्य,
ममता प्रेस, कबीरचौरा, वाराणसी

निवेदन

भगवान् बुद्ध ने 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' जो उपदेश दिय उसे प्रव्रजित और गृहस्थ धर्मों के अनुसार दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। दोनो प्रकार के उपदेश त्रिपिटक मे बिखरे पडे है या यो कहे कि सारा त्रिपिटक उ ही उपदेशो से भरा हुआ है। उनमे गृहस्थ धर्म सम्बन्धी जो उपदेश है, वे गृहस्थ-जीवन मे रहने वाले राजा से लेकर रक तक के लिए कल्याणकारी और सुखावह है। स्त्री-पुरुष दोनो के लिए लाभप्रद है। उन्ही उपदेशो के सहारे अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि जैसे गृहस्थजनो ने अपना धार्मिक जीवन व्यतीत किया था और उन्ही उपदेशो के भरोसे एक समय सारा भारत ही नही, प्रत्युत विश्व का अधिकाश भू भाग बौद्ध उपासक उपासिकाओ से परिपूर्ण था। आज भी बर्मा, लका, स्याम आदि देश उन उपदेशो को अपनी धार्मिक सम्पत्ति समझते है और उनके आचरण, प्रचार एव रक्षा की ओर विशेष ध्यान देते है। अब भारत भी इसका अपवाद नही है। उस परम हितकारक उपदेशो की ओर हम भारतवासी स्वत. ही आकर्षित होते जा रहे है। यह वह समय है जब हमे उन परम कल्याणकारी उपदेशो के सहारे ही अपने आध्यात्मिक और बाह्य जीवन-स्तर को ऊपर उठाना होगा। विश्व मे यदि कोई ऐसा धर्म है, जो मानवमात्र के लिए शील, सत्य,

न्याय, एव अहिंसा के आधार पर कल्याणकारी सिद्ध हो, तो वह यही एकमात्र बौद्धधर्म है। हमे इसके अध्ययन मनन, एव आचरण से अपने तथा अपने सम्पर्क मे रहने वाले प्राणिमात्र के कल्याण का प्रयत्न करना होगा।

बहुत दिनो से हमारे पाठको की माग रही है कि गृहस्थ धर्म सम्बन्धी तथागत के उपदेशो का एक ऐसा सकलन प्रकाशित हो, जिसमे गृहस्थो के जानने योग्य सभी बातें आ जॉय। इस सम्बन्ध मे पूज्य भदन्त बोधानन्द जी महास्थविर का विशेष आग्रह था। यह जो कुछ सकलित हो सका है उसके लिए पाठको को महास्थविर जी की प्रेरणा का विशेष कृतज्ञ होना चाहिए। इसके सकलन मे मैंने दान, शील और भावना के क्रम को अपनाया है और यह ध्यान रखा है कि बुद्ध-वचन के अतिरिक्त अट्ठकथाओ या प्रकरण ग्रन्थो के पाठ प्रस्तुत परिच्छेदो मे न आने पावें, किन्तु जिन्हे बहुत आवश्यक समझा है, उन्हे 'विशेष' स्थलो पर उद्धृत कर दिया है।

सारनाथ, वाराणसी
१९ मार्च, ५१

—भिक्षु धर्मरक्षित

विषय सूची

पहला परिच्छेद

दान

दूसरा परिच्छेद

शील

तीसरा परिच्छेद

शरण

चौथा परिच्छेद

यज्ञ

पाँचवाँ परिच्छेद

कर्म

विशेष—

आठवाँ परिच्छेद

धन की सुरक्षा

नवाँ परिच्छेद

मैत्री

दसवाँ परिच्छेद

शासन

ग्यारहवाँ परिच्छेद

शुद्धि

बारहवाँ परिच्छेद

श्राद्ध

तेरहवाँ परिच्छेद

भावना

चौदहवाँ परिच्छेद

शिष्टाचार

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

धर्म की महत्ता और तीर्थ-स्थान

— * —

'अप्पमादेन सम्पादेथ'

पहला परिच्छेद

दान

१. दान किसे देना चाहिए ?

(१)

ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे। तब माघ माणव जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर (कुशल-क्षेम पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे माघ माणव ने भगवान् से कहा—

"हे गौतम ! मैं दायक हूँ, दानपति हूँ, वदान्य (माँगने योग्य) हूँ, त्यागी हूँ, धर्म के साथ भोगों को ढूँढ़ता हूँ। धर्म के साथ भोगों को ढूँढ़कर धर्म से प्राप्त धन को धर्म के साथ एक को भी देता हूँ। दो को भी देता हूँ। तीन को भी देता हूँ। चार को भी देता हूँ। पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ और उससे अधिक को भी देता हूँ। हे गौतम ! क्या ऐसे दान करते, ऐसे यजन (यज्ञ) करते, मैं बहुत पुण्य कमाता हूँ ?"

"तो माणव ! तुम ऐसे दान देते हुए, ऐसे यजन करते हुए बहुत पुण्य कमाते हो। माणव ! जो दायक (दाता), दानपति, वदान्य (माँगने योग्य व्यक्ति) अधिक को भी देने वाला होता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।"

तब माघ माणव ने भगवान् से गाथाओं में कहा—

"काषाय वस्त्र पहने बेघर हो विचरण करते हुए वदान्य हे गौतम! मैं आपसे पूछता हूँ कि जो गृहस्थ दानपति, याचनीय, पुण्य का इच्छुक और पुण्य को देखते हुए दान करते यहाँ दूसरे को अन्न पान का दान करता है, उस यजमान की किस प्रकार के पात्र में दान देने से शुद्धि होती है?"

"जो गृहस्थ दानपति, याचनीय, पुण्य का इच्छुक, पुण्य को देखते हुए दान करते, यहाँ दूसरे को अन्न पान का दान करता है, तो वह दक्षिणा पाने के योग्य व्यक्ति की आराधना (सेवा) करे।"

"जो गृहस्थ दानपति, याचनीय, पुण्य का इच्छुक, पुण्य को देखते हुए दान करते, यहाँ दूसरे को अन्न पान का दान करता है, भगवन्! उसके लिये दक्षिणा पाने के योग्य व्यक्ति को कहे।"

'जो ब्राह्मण पुण्य की इच्छा से दान करे, वह जो ससार म अनासक्त विचरण करते हैं, अकिंचन हैं, सयमी हैं और निर्वाण को पा लिय ह, उन्हे समयानुसार हव्य (हवन की सामग्री) परोसे। जो सब सयोजन और बन्धन रहित, दान्त, निपुण, निष्पाप तथा आशा रहित हैं, उन्हे समयानुसार हव्य परोसे।

"जो ब्राह्मण पुण्य को देखता हुआ दान करे, वह राग, द्वेष और मोह को त्यागकर जो क्षीणाश्रव (=मलरहित=अर्हत्) और ब्रह्मचर्य पूर्ण हैं, उन्हे समयानुसार हव्य परोसे। जिसमें माया तथा मान नही हैं, जो लोभ रहित, ममत्वशून्य और आशारहित हैं उन्हे समयानुसार हव्य परोसे। जो तृष्णा से चचल नही हैं और जो ससार सागर को ममत्व रहित हो पारकर विचरण करते है। जिनमे लोक के प्रति कुछ भी तृष्णा नही है, यहाँ और परलोक (दोनों में) होने न होने (भवाभव) से बिल्कुल मुक्त हैं। जो काम भोगों को छोड, बेघर हो विचरण करते हैं। जो सयतात्मा और बाण के समान ऋजु हैं। जो स्मृतिमान्, रागरहित, कोप शून्य हैं, जिनकी शरीर

छूटने के बाद पुन यहा गति नहीं है, जो जन्म मरण को पूर्ण रूप से छोड सम्पूर्ण स देहो से निमुक्त है। जो अपना द्वीप आप हो ससार मे विचरण करते ह, अकिंचन और दु खो से मुक्त है। "जो यहा 'यह जैसा है, वैसा जानते हे, यह अन्तिम जन्म है, फिर उत्पन्न होना नही है'—ऐसा जानते हैं, जो ज्ञानी, ध्यान में लगे रहनेवाले, स्मृतिमान्, सम्बोधिप्राप्त और बहुजन के लिये शरण हे, ।"

"भगवन्! मेरा प्रश्न निश्चय ही सार्थक हुआ। मुझे आपने दक्षिणा (दान) पाने योग्य व्यक्ति को बतलाया। आप ही इस सम्बन्ध म जैसा है, वैसा जानते हे, क्योकि आपको यह धम वैसा ही विदित है।"[१]

(२)

"भन्ते! दान किसे देना चाहिये?"

"महाराज जिस पर चित्त प्रसन्न हो।"

"भन्ते! किसे दान देने म महाफल होता है?"

"महाराज! शीलवान् (सच्चरित्र) को दान देने में महाफल होता है, दु शील को नही। तो महाराज! मै यहाँ तुझी से पूछता हूँ, जैसा रुचे वैसा उत्तर दो। तुम क्या मानते हो महाराज! यहा युद्ध आरम्भ हो जाय, सग्राम छिड जाय, अशिक्षित, अनभ्यस्त, डरपाक, भयभीत और जान लेकर भागनेवाला क्षत्रिय कुमार आये, तो तुम उस पुरुष को रखोगे? तुम्हारा काम उससे होगा? वैसे पुरुष तुम्हे चाहिये।"

"भन्ते! उस पुरुष से मेरा काम नही होगा। वैसा पुरुष मुझे नहा चाहिये।"

"यदि अशिक्षित ब्राह्मण कुमार आये, वैश्य कुमार आये, शूद्र कुमार आये?"

"भन्ते! मुझे वैसे पुरुष नहा चाहिये।"

---

१ सुत्तनिपात ३, ५।

'तो क्या मानते हो महाराज ! युद्ध आरम्भ हो जाय, सग्राम छिड जाय, तब सुशिक्षित, अभ्यस्त, निडर और जान लेकर न भागने वाला क्षत्रिय कुमार आये, तो उस पुरुष को रखोगे ? तुम्हारा काम उससे होगा ? वैसे पुरुष तुम्हे चाहिये ?"

"भन्ते ! उस पुरुष से मेरा काम होगा, वैसे ही पुरुष मुझे चाहिये ।"

"यदि ब्राह्मण कुमार आये, वैश्य कुमार आये, शूद्र कुमार आये ?"

"भन्ते ! उस पुरुष से मेरा काम होगा, मुझे वैस पुरुष चाहिये ।"

"इसी प्रकार महाराज ! जिस कुल से निकल कर बेघर हो प्रव्रजित हुआ होता है और वह होता है पाँच बातो से रहित तथा पाँच बातों से युक्त, तो उसे दान देने म महाफल होता है । कौन सी पाँच बाते रहित होती ह ? (१) कामच्छन्द (कामुकता), व्यापाद (द्रोह), स्त्यान-मृद्ध (शरीर और मन का आलस्य) औद्धत्य कौकृत्य (चचलता और सकोच) और विचिकित्सा (सन्देह)—ये बाते रहित होती ह ।'

"किन बातो स युक्त होता है ? अशैक्ष्य (जिसे कुछ सीखना शेष नही ह = अर्हत्)—शील स्कन्ध, अशैक्ष्य समाधि स्कन्ध, अशैक्ष्य विमुक्ति स्कन्ध और अशैक्ष्य विमुक्ति ज्ञान दर्शन–इन पाँच बातों स युक्त होते ह ।

इस प्रकार पाच बातो स रहित और पाच बातो से युक्त को देने म महाफल होता ह । भगवान् ने यह कहा । यह कहकर सुगत शास्ता ने यह भी कहा—

"जिस मनुष्य म सग्रामभूमि म जाने के लिये बल, वीर्य होता है, उसीको राजा युद्ध के लिये पोसता है, न कि अशूर (डरपोक) को जाति के कारण । उसी प्रकार जिसम क्षमा कोमलता और धर्म प्रतिष्ठित हैं, उस आर्य वृत्ति वाले, मेधावी को नीच जाति का होने पर भी पूजे ।

रमणीय आश्रम बना, उसमे बहुश्रुत को बसाये । प्याऊ-कूप और दुर्ग बनवाये । अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन और खादनीय वस्तु को प्रसन्नचित्त से ऋजुभूत को दे ।"[1]

---

१ सयुत्त निकाय १, ३, ३, ४ ।

(३)

"भन्ते ! ससार में कितने व्यक्ति दक्षिणा (दान) के योग्य हैं ? कितने को दान देना चाहिए ?"

"गृहपति ! ससार मे दो व्यक्ति दक्षिणा के योग्य हैं—(१) शैक्ष्य (अर्हत् पद को न प्राप्त हुआ स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् मार्गस्थ) और (२) अशैक्ष्य (अर्हत्)। गृहपति ! यही दो व्यक्ति दक्षिणा के योग्य हैं, इन्हे दान देना चाहिए ।"[1]

(४)

"खेतों का दोषतृण है । इस प्रजा (मनुष्या) का दोष राग, द्वेष, मोह और इच्छा है इसलिए इनसे रहित (व्यक्तिया) का दान देने मे महाफल होता है ।"[2]

२ आठ बातो से युक्त को दान देने से महाफल

"भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त खेत म बीज बोने से न महाफल होता है, न महास्वाद होता है और न पूर्ण अन्न । किन आठ बातों से युक्त होने पर ? यहाँ भिक्षुओ ! खेत ऊँच नीच होता है । पत्थर तथा ककड से भरा होता है । ऊसर होता है । गहरी जुताई नही हुई होती है । न पानी आने योग्य होता है । न पानी बाहर जाने योग्य होता है । न नाली वाला होता है और न मेड (मर्यादा) युक्त होता है । इसी प्रकार भिक्षुओ ! आठ बातों से युक्त श्रमण ब्राह्मणों को दान देने म न महाफल होता है, न महा आनृशस (गुण) । कैसी आठ बातों से युक्त होने पर ? यहाँ भिक्षुओ ! श्रमण ब्राह्मण मिथ्या दृष्टि (झूठी धारणा) वाले होते हैं । मिथ्या सकल्प, मिथ्या वचन, मिथ्या कर्मान्त, मिथ्या आजीविक , मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति और मिथ्या समाधि वाले होते

---

१ अगुत्तर निकाय २, ४, ४ ।

२ धम्मपद २४, २३ २६ ।

हैं। इस प्रकार भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त श्रमण ब्राह्मणो को दान देने म न महाफल और न महा आनृशस होता है।

भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त खेत मे बीज बोने से महाफल होता है, महास्वाद होता है और पूर्ण अन्न। कैसा आठ बातों स युक्त होने से ? यहाँ भिक्षुओ ! खेत न ऊँचा होता हे और न नीचा। पत्थर ककड रहित होता है। ऊसर नही होता है। गहरी जुताई हुई होती हे। पानी आने योग्य होता हे। पानी के बाहर जाने योग्य होता हे। नाली वाला होता है। मड युक्त होता है। इसी प्रकार भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त श्रमण ब्राह्मण को दान देने मे महाफल और महा आनृशस होता है। कैसी आठ बातों से ? यहाँ भिक्षुओ ! श्रमण ब्राह्मण सम्यक् दृष्टि वाले होते है। सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि वाले होते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त श्रमण ब्राह्मणो का दान देने म महाफल और महा आनृशस होता हे।"[1]

२ सत्कार पूर्वक दान देना

"क्या गृहपति ! तेरे घर से दान दिया जाता है ?"

"भन्ते ! मै अपने घर से दान देता हूँ—रूखी कणो (चावल के कण से बना भात) और कॉजी (बिलङ्ग)।"

"गृहपति ! जो रूखा या प्रणीत (उत्तम) भोजन का दान देता है और वह सत्कारपूर्वक नही देता है, बेमन होकर देता है, अपने हाथ से नहीं देता है, फेक कर दान देता है, दान का फल नही मिलता—ऐसी धारणा (=अनागमनदृष्टि) के साथ देता है, वह जहाँ जहा उस दान के विपाक से उत्पन्न होता है, वहाँ वहाँ न खूब खाने पीने के सुख की ओर उसका चित्त झुकता है, न ओढने पहनने की ओर, न सवारी के सुख की

---

१ अगुत्तर निकाय ८, ४, ४।

भोगने की ओर और न पॉच प्रकार के काम भोगो के सुख की ओर। जो उसके पुत्र, स्त्री, दास, प्रेष्य या कर्मकर होते हैं, वे भी सेवा नही करते, बात नहीं सुनते, आज्ञा का पालन नही करते। सो किस कारण? गृहपति! ऐसा ही होता है सत्कारपूर्वक नही किये हुए कर्मों का फल। जो गृहपति! यदि रूखा या प्रणीत (उत्तम) भोजन का दान देता है और देता है, सत्कारपूर्वक, मन से देता है। अपने हाथ से देता है, फेंककर नही देता है, वह जहॉ-जहॉ उत्पन्न होता है, उस दान के विपाक से वहा वहाँ खूब खाने-पीने के सुख की ओर उसका चित्त झुकता है, ओढने पहनने की ओर उसका चित्त झुकता है, सवारी के सुख को भोगने की ओर उसका चित्त झुकता है और पाँच प्रकार के काम भोगो के सुख की ओर। जो उसके पुत्र, स्त्री, दास, प्रेष्य या कर्मकर होते हैं, वे भी सेवा करते हैं, बात सुनते हैं, आज्ञा का पालन करते हैं। सो किस कारण? गृहपति! ऐसा ही होता है सत्कारपूर्वक किए हुए कर्मों का फल।

बहुत पहले गृहपति! बेलाम नाम का ब्राह्मण हुआ था। उसने इस प्रकार दान दिया। महादान दिया—चौरासी हजार सोने की थालियों मे रुपया भर कर दिया, चौरासी हजार कॉसे की थालियों में हिरण्य भर कर दिया। चौरासी हजार थालियों को सुवर्णमय अलकारों से युक्त, सुवर्ण झालर और चादरों के सहित दिया। चौरासी हजार रथों को दिया, जो सिह, व्याघ्र, व्याघ्रिणी के चर्मों से युक्त थे, पीले कम्बलो से युक्त थे। सुवर्णमय अलकारों से युक्त, सुवर्ण झालर और चादरों के साथ। चौरासी हजार गायों को वस्त्रों से सजा धजाकर दिया। चौरासी हजार कन्याओं को मणि, मुक्ता के कुण्डलों के साथ। चौरासी हजार चारपाइयों को गाय के चित्रवाले आसन, झालरदार आसन, काम किये हुए आसन, कदलीमृग के छाल (चर्म) के बने आसन, चॅदवादार आसन, दोनों ओर रक्तवर्ण की तकिया रखे हुए आसन (सहित) दिया। चौरासी

करोड सूक्ष्म क्षौम (अलसी), सूक्ष्म रेशम, सूक्ष्म कम्बल, सूक्ष्म कपास के बने वस्त्रों को दिया। अन्न, पान, (पेय) खाद्य, भोज्य, पेय का क्या कहना ! मानो नदी बह रही हो। गृहपति ! यदि तुझे ऐसा हो कि उस समय बेलाम ब्राह्मण कोई दूसरा रहा होगा, जो महादान दिया था। किन्तु गृहपति ! ऐसा नहीं समझना चाहिए। मैं ही उस समय बेलाम ब्राह्मण था। मैंने ही उस समय महादान दिया था।

गृहपति ! उस दान में न कोई दाक्षिणेय्य था और न कोई उस दक्षिणा का विशोधन किया। गृहपति ! बेलाम ब्राह्मण ने जो दान दिया, वह महादान था, किन्तु जो एक दृष्टिसम्पन्न (= स्रोतापन्न) को भोजन कराये—यह उससे भी महाफल वाला होता है। जो सौ दृष्टि सम्पन्नों को भोजन कराये और जो एक सकृदागामी को भोजन कराये—यह उससे भी महाफल वाला होता है। जो सौ सकृदागामी (व्यक्तियों) को भोजन कराये और जो एक अनागामी को भोजन कराये जो सौ अनागामी (व्यक्तियों) को भोजन कराये और जो एक अर्हत् को भोजन कराये। जो सौ अर्हतों को भोजन कराये और जो एक प्रत्येकबुद्ध को भोजन कराये। जो तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को भोजन कराये और जो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन कराये। जो चारों दिशाओं के भिक्षु संघ को उद्देश्य कर विहार (मठ) बनवाये और जो प्रसन्न चित्त हो बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण जाये एवं जो प्रसन्न चित्त के साथ शिक्षापदों (पञ्चशील) का पालन करे—यह उससे भी महाफल वाला होता है।"[1]

४ दान के साक्षात् फल

"भन्ते ! दान के साक्षात् फल को बतला सकते हैं ?"

"तो सिंह ! तुझी से पूछता हूँ, जैसा लगे, वैसा उत्तर दो। तो

---

१ अंगुत्तर निकाय ६, २, १०।

क्या मानते हो सिंह ! दो पुरुषों में से एक अश्रद्धावान्, कजूस, कदरी, भीरु और निन्दक हो तथा दूसरा श्रद्धावान्, दानपति, सदा दान देने में लगा रहने वाला। तो क्या मानते हो सिंह ! क्या अर्हत् पहले पुरुष पर अनुकम्पा करता हुआ अनुकम्पा करेगा जो कि अश्रद्धावान्, कजूस, कदरी भीरु और निन्दक है या उस पर जो कि श्रद्धावान्, दानपति तथा सदा दान देने मे लगा रहने वाला है ?"

"भन्ते ! जो वह पुरुष अश्रद्धावान्, कजूस, कदरी, भीरु और नि दक हैं, उसे क्या अर्हत् अनुकम्पा करते हुए अनुकम्पा करेगा ? प्र युत वह उस पर अनुकम्पा करेगा जो कि पुरुष श्रद्धावान्, दानपति, तथा सदा दान देने मे लगा रहने वाला है।"

"तो क्या मानते हो सिंह ! आगन्तुक अर्हत् उसके पास जायेगा, जो पुरुष अश्रद्धावान् है या उसके पास जो श्रद्धावान्, दानपति और दान देने म रत है ?"

"भन्ते ! जो पुरुष अश्रद्धावान् है उसे क्या ? आगन्तुक अर्हत् पहले उसके पास जायेगा, जो पुरुष श्रद्धावान्, दानपति और दान देने में रत है।

"तो क्या मानते हो सिंह ! अर्हत् ग्रहण करते समय पहले किसका ग्रहण करेगा, उस पुरुष का जो कि अश्रद्धावान् है या जो पुरुष श्रद्धा वान् दान देने में रत है ?"

"भन्ते ! जो अश्रद्धावान् है, उसे क्या ? अहत् ग्रहण करते समय पहले उसी का ग्रहण करेगा, जो पुरुष श्रद्धावान् दान देने मे रत है ?"

"तो क्या मानते हो सिंह ! अर्हत् धर्मोपदेश देते हुए पहले किसे उपदेश देगा ?"

"भन्ते ! अर्हत् धर्मोपदेश देते हुए पहले उसे देगा, जो श्रद्धावान् है।"

"तो क्या मानते हो सिंह ! किसका कल्याण कीर्ति शब्द (यश) चारों ओर फैलेगा ?"

"भन्ते ! कल्याण कीर्ति शब्द फैलते हुए उसी का फैलेगा जो कि श्रद्धावान् है ।"

"तो क्या मानते हो सिंह ! कौन जिस किसी परिषद् मे जाये चाहे वह क्षत्रिय परिषद् हो, ब्राह्मण परिषद् हो, गृहपति (वैश्य) परिषद् हो या श्रमण परिषद् हो, बिना चुप रहे निभीक़ता के साथ जायेगा ?"

'भन्ते ! बिना चुप रहे निर्भीकता के साथ वही जायेगा, जो कि श्रद्धावान् है ।"

"तो क्या मानते हो सिह ! कौन काया छोड मारने क बाद सुगति स्वर्ग लोक म उत्प न होगा ?"

"भन्ते ! जो वह पुरुष अश्रद्धावान् है, वह क्या सुगति स्वर्ग लोक में उत्पन्न होगा ? जो वह पुरुष श्रद्धावान् हे, वही काया छोड मरन के बाद सुगति-स्वग लोक म उत्पन्न होगा ।"

"हर एक प्रकार से भन्ते ! भगवान् ने दान के साक्षात् फल को कहा, किन्तु मै यहॉ भगवान् पर श्रद्धा नही करता, क्योंकि मै भी इतना जानता हूँ । भन्ते ! मै दायक हूँ, दानपति हूँ, मुझ पर अर्हत् अनुकम्पा करते हुए पहले अनुकम्पित होते हैं । अर्हत् आते हुए पहले मेरे पास आते है । अर्हत् ग्रहण करते हुए पहले मेरा ग्रहण करते हैं । धर्मोपदेश देते हुए पहले मुझे धर्मोपदेश देते हैं । मेरा कल्याण कीति शब्द चारो ओर फैला हुआ है—'सिह सेनापति दायक है, सघ का सेवक है ।' भन्ते ! मै दायक हूँ, दानप त हूँ, जिस किसी परिषद् म जाता हूँ । चाहे वह क्षत्रिय परिषद् हो, ब्राह्मण, वैश्य ए४ श्रमण परिषद् हो बिना चुप रहे निर्भीकता के साथ जाता हूँ । भन्ते ! भगवान् ने साक्षात् दान के फल को कहा, किन्तु यहाँ मै भगवान् के ऊपर श्रद्धा नही करता, क्योंकि इतना मै भी जानता हूँ, अपितु भगवान् जो मुझे यह कहते हैं— "सिंह सेनापति ! दायक काया को छोड मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है ।" इतना ही मै नहीं जानता हूँ, इसलिए यहाँ मैं भगवान् पर श्रद्धा करता हूँ ।

"ऐसा ही है सिंह ! ऐसा ही है सिंह ! दायक, दानपति काया छोड मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक म उत्पन्न होता है ।"[1]

५ समान ही दान के अ-समान फल

"क्या भन्ते ! यहाँ एक पुरुष का दिया हुआ वैसा ही दान न महाफल वाला होता है, न महा आनृशंस वाला और भन्ते ! यहाँ एक पुरुष का दिया हुआ वैसा ही दान महाफल वाला होता है, महा-आनृशंस वाला ?"

"होता है सारिपुत्र ! यहाँ एक पुरुष का दिया हुआ वैसा ही दान न महाफल वाला होता है, न महा आनृशंस वाला और होता है सारिपुत्र ! यहाँ एक पुरुप का दिया हुआ वैसा ही दान महफल वाला, महा आनृशंस वाला ।"

"भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है ? "

'यहाँ सारिपुत्र ! एक व्यक्ति श्रमण ब्राह्मणो को अन्न पान, वस्त्र, सवारी, माला, गन्ध, विलेपन, निवास गृह और प्रदीप का सापेक्ष दान देता है, बँधे हुए चित्त से दान देता है, सन्निधि को देखता हुआ दान देता है—'मरने पर मै इसका उपभोग करूँगा' सोचकर दान देता है । तो क्या मानते हो सारिपुत्र ! यहाँ एक पुरुष इस प्रकार का दान देता है ?'

"हाँ, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! जो सापेक्ष (इच्छा युक्त) दान देता है वह उस दान को देकर काया छोड मरने के बाद चातुर्महाराजिक देवताओं के साथ उत्पन्न होता है । वह उस कर्म, ऋद्धि, यश और आधिपत्य को समाप्त कर नीचे गिरने वाला होता है, यहा आ जाता है । सारिपुत्र ! एक पुरुष न तो सापेक्ष दान देता है, न बँधे हुए चित्त से दान देता

१ अंगुत्तर निकाय ७, ६ ४ ।

है, न सन्निधि को देखते हुए दान देता है, न 'मरने पर इसका उपभोग करूँगा' सोचकर दान देता है। वह ठीक तौर से दान देता है ठीक तौर से नहीं भी देता है। पहले पिता पितामह के किये जैसा करता है। कुल के पुराने लोगो के दान को रोकना योग्य नही है—सोच, दान देता है। मैं पकाता हूँ, ये लोग नहीं पकाते हैं, पकाने वाले का उचित नही है कि न पकाने वाले को न दे—सोच, दान देता है। उनके लिए पूर्व के ऋषियों ने महायज्ञ किया है। जैसे अट्टक, वामक, वामदेव विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वाशिष्ठ, काश्यप और भृगु। इस प्रकार मेरा दान सविभाग (बाँट कर उपभोग करना) के लिए होगा—सोच, दान देता है। मेरे इस दान के देते हुए चित्त प्रसन्न होता है। सुख सौमनस्य उत्पन्न होता है—सोच, दान देता है। तो क्या मानते हो सारिपुत्र! यहा एक पुरुष इस प्रकार का दान देता है?"

"हाँ, भन्ते!"

"सारिपुत्र! एक पुरुष न तो सापेक्ष दान देता है न मरने पर इसका उपभोग करूँगा—सोचकर दान देता है, वह उस दान को देकर काया छोड मरने के बाद ब्रह्मकायिक देवताओ के साथ (ब्रह्मलोक मे) उत्पन्न होता है। वह उस कर्म, ऋद्धि, यश और आधिपत्य को प्राप्त कर फिर यहाँ नही आने वाला अनागामी होता है। सारिपुत्र! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे एक पुरुष का दिया हुआ वैसा ही दान न महाफलवान् होता है न महा आनृशस वाला और एक पुरुष का दिया हुआ वैसा ही दान महाफल वाला होता है, महा आनृशस वाला[1]।"

६ दान से ही सब कुछ

"ग्रामीण! आज से इक्कानबे कल्प पूर्व तक जिसे मै स्मरण करता हूँ एक कुल को भी नही जानता, जो पक्की भिक्षा को देने मात्र से उपहत (नष्ट) हो गया हो। अपितु जो वह कुल आढ्य, महाधन सम्पन्न,

---

१ अंगुत्तर निकाय ७, ५, ६।

बहुत सोना चाँदी से युक्त, बहुत वस्तु उपकरण से युक्त, बहुत धन धान्य से युक्त हुए हैं, वह सभी दान से हुये हैं, सत्य से हुए हैं, श्रामण्य से हुए ह।"[1]

७ धर्म-दान सर्वश्रेष्ठ है

सब्बदान धम्मदान जिनाति।
सब्ब रस धम्मरसो जिनाति ॥[2]

धर्म का दान सब दानों म बढकर है, धर्म का रस सब रसो मे बढकर है।

८ भोजन का दान

"भिक्षुओ! भोजन दान करनेवाला दायक दान लेने वाले (भिक्षुओं) को पाँच चीज देता हे। कौन सी पाँच? (१) आयु देता है (२) वर्ण (रूप) देता है (३) सुख देता है (४) बल देता है और (५) प्रतिभा देता हे। आयु को देकर वह दिव्य या मानुषी आयु का भागी होता है। वर्ण सुख, बल और प्रतिभा को देकर दिव्य या मानुषी वर्ण, सुख, बल और प्रतिभा का भागी होता हे।

आयुदो बलदो धीरो, वण्णदो पटिभानदो।
सुखस्स दाता मेधावी, सुखं सो अधिगच्छति ॥

आयु, बल, वर्ण, प्रतिभा और सुख को देने वाला वह धीर मेधावी पुरुष सुख को प्राप्त होता हे।

आयु दत्वा बल वण्ण, सुखञ्च पटिभानदो।
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जति ॥

आयु, बल, वर्ण, सुख और प्रतिभा को देकर, वह जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, दीर्घायु और सुखी होता है।"[3]

---

१ सयुत्त निकाय ४, ४०, ६।

२ धम्मपद २४, २१।

३ अङ्गुत्तर निकाय ५, ४, ७।

९ यवागु दान मे दस फल

"ब्राह्मण ! यवागु के दस गुण है—(१) यवागु देने वाला आयु का दाता होता है, (२) वर्ण (रूप) का दाता होता है, (३) सुख का दाता होता है, (४) बल का दाता होता है, (५) प्रतिभा का दाता होता है, (६) उसको दी हुई यवागु पीने पर क्षुधा को दूर करती है, (७) प्यास को दूर करती हे, (८) वायु को अनुकूल करती है, (९) पेट को साफ करती है, (१०) न पचे को पचाती है । ब्राह्मण ! यवागु के दस गुण ह ।"

यो सञ्ञतान परदत्त भोजिन
कालेन सक्कच्च ददाति यागु ।
दसस्स ठानानि अनुप्पवेच्छति
आयुञ्च वण्णञ्च सुख बलञ्च ।।
पटिभानमस्स उपजायते ततो
खुद पिपास व्यपनेति वात ।
सोधेति वत्थि परिणामेति भुत्त
भेसज्जमेत सुगतेन वण्णित ।।

जो दूसरे क दिये भोजन करने वाले सयमी (व्यक्तियो) को समय पर सत्कारपूर्वक यवागु देता है, उसको दस बाते मिलती हैं— आयु, वर्ण, सुख, बल, तथा प्रतिभा, यवागु क्षुधा, पिपासा और वायु को दूर करती है । पेट को शोधती है और खाये हुए को पचाती है ।

तस्मा हि यागु अलमेव दातु
निच्च मनुस्सेन सुखत्थिकेन ।
दिब्बानि वा पत्थयता सुखानि
मनुस्स सोभग्गतमिच्छता वा ।।

इसलिए दिव्य सुख को चाहने वाले या मानुषी सौभाग्य को चाहने वाले सुखार्थी मनुष्य को नित्य यवागु का दान करना ठीक है ।"[1]

१ विनयपिटक ३, ६, ४, ३ ।

१० विहार का दान

"विहार सदा, गमा, हिंसक पशु, सरीसृप (साप बिच्छू) मच्छड, और शीत तथा वर्षा से बचाता है। प्रचण्ड उठी हुई वायु और धूप को दूर करता है। वह आश्रय के लिये, सुख के लिए, ध्यान और विपश्यना करने के लिए ठीक है।

भगवान् बुद्ध ने सघ के लिए विहार के दान को श्रेष्ठ कहा है। इसलिए पण्डित पुरुष अपने हित को देखते हुए रमणीय विहारों को बनवाए और वहा बहुश्रुतो का वास कराए। उन ऋजुभूत (भिक्षुओ) को अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन, प्रसन्न चित्त से प्रदान करे। वे उसे सारे दु खों को दूर करने वाले धर्म का उपदेश करेगे, जिस धर्म को वह यहाँ जानकर आश्रव रहित हो निर्वाण को प्राप्त हो जाएगा।"[1]

११ अष्ट परिष्कार का दान

"गृहपति! चार बातो से युक्त आर्य श्रावक गृहस्थ धर्म के मार्ग मे भली प्रकार स्थित हो, स्वर्ग का लाभी होता है। कौन सी चार? (१) यहाँ गृहपति! आर्यश्रावक भिक्षु सघ को चीवर से प्रस्तुत रहता है, (२) ग्लान प्रत्यय (रोगी का पथ्य) से प्रस्तुत रहता है, (३) भैषज्य तथा (४) परिष्कार से प्रस्तुत रहता है।

जो पण्डित पुरुष गृहस्थ धर्म के मार्ग म भली प्रकार स्थित हो एकाग्र और शीलवान् भिक्षुओ को चीवर, भोजन, शयन और ग्लान प्रत्यय से सदा प्रस्तुत रहते है, उनका रातो दिन पुण्य बढता है। वे कल्याण से कम को करके स्वर्ग को प्राप्त करते है।"[2]

१२ प्रिय वस्तु का दान

(१)

"प्रिय वस्तु का दाता प्रिय वस्तु को पाता है। जो प्रेम से ऋजुभूत,

---

१ विनयपिटक ४, ६, १, २।

२ अङ्गुत्तर निकाय ४, १, ८।

व्रती, मुक्त और अनग्रहीत खेत के सदृश अर्हन्तों को जानकर वस्त्र, शयन, अन्न, पान और नाना प्रकार के प्रत्ययों (वस्तुओं) को देता है, वह प्रिय वस्तु का दाता सत्पुरुष अपने दुस्त्याज्य वस्तु को त्याग कर प्रिय वस्तु को लाभ करता है।"[1]

(२)

"प्रिय वस्तु का दाता प्रियवस्तु को पाता है। अग्र का दाता पुन अग्रता प्राप्त करता है। उत्तम (वस्तु) का दाता उत्तम (स्थान) का लाभ करता है। श्रेष्ठ स्थान को जाता है।

जो व्यक्ति अग्रदाता, उत्तमदाता, श्रेष्ठदाता है, वह जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, दीर्घायु और यशस्वी होता है।"[2]

१३ चार प्रकार की दक्षिणा-विशुद्धि

"आनन्द! यह चार दक्षिणा (दान) की विशुद्धियाँ हैं। कौन सी चार? (१) आनन्द! कोई कोई दक्षिणा तो दायक से परिशुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं। (२) कोई कोई दक्षिणा प्रतिग्राहक से शुद्ध होती है, दायक से नहीं। (३) आनन्द! कोई दक्षिणा न दायक से शुद्ध होती है, न प्रतिग्राहक से। (४) कोई दक्षिणा दायक से भी परिशुद्ध होती है और प्रतिग्राहक से भी। आनन्द! दक्षिणा दायक से कैसे परिशुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं? आनन्द! जब दायक शीलवान् और पुण्यात्मा हो और प्रतिग्राहक हो दु:शील, पापात्मा। आनन्द! तो दक्षिणा दायक से परिशुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं। आनन्द! कैसे दक्षिणा प्रतिग्राहक से परिशुद्ध होती है, दायक से नहीं? जब आनन्द! प्रतिग्राहक शीलवान् और पुण्यात्मा हो और दायक हो दु:शील, पापात्मा। आनन्द! कैसे दक्षिणा न दायक से परिशुद्ध होती है, न प्रतिग्राहक से? आनन्द! जब दायक दु:शील, पापात्मा हो और प्रतिग्राहक भी दु:शील,

---

१ अङ्गुत्तर निकाय ५, ५, ४।

२ अङ्गुत्तरनिकाय ५, ५, ५।

पापात्मा हो। आनन्द! कैसे दक्षिणा दायक से भी परिशुद्ध होती है और प्रतिग्राहक से भी? आनन्द! जब दायक शीलवान्, पुण्यात्मा हो और प्रतिग्राहक भी शीलवान्, पुण्यात्मा हो, तो दक्षिणा शुद्ध होती है। आनन्द! यह चार दक्षिणा की विशुद्धियाँ हैं।"[1]

१४—चौदह प्रकार के व्यक्तिगत दान

"आनन्द! यह चौदह व्यक्तिगत दक्षिणाये ह। कौन सी चौदह? (१) तथागत अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध को दान देता है—यह पहली व्यक्तिगत दक्षिणा हे। (२) प्रत्येकसम्बुद्ध को दान देता है। (३) तथागत के श्रावक (शिष्य) अर्हत् को दान देता है। (४) अर्हत् फल के साक्षात् करने म लगे हुए को दान देता हे। (५) अनागामी को दान देता है। (६) अनागामी फल साक्षात् करने में लगे हुए को दान देता है—। (७) सकृदागामी फल साक्षात् करने में लगे हुए को दान देता ह। (६) स्रोतापन्न को दान देता है। (१०) स्रोतापत्ति फल साक्षात् करने म लगे हुए को दान देता है। (११) गाँव के बाहर के वीतराग को दान देता है। (१२) शीलवान् पृथक् जन को दान देता है। (१३) दु शील पृथक् जन को दान देता है। (१४) पशु योनि म उत्पन्न हुए को दान देता है।

वहाँ आनन्द! पशु योनि म उत्पन्न हुए को दान देने मे सौगुनी दक्षिणा की आशा रखनी चाहिए। दु शील पृथक् जन में सौ हजार। स्रोतापत्ति फल साक्षात् करने मे लगे हुए को दान देने मे असख्य, अप्रमेय (प्रमाण रहित) दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये। फिर स्रोतापन्न की क्या बात? फिर सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, प्रत्येकबुद्ध और तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध की क्या बात?"[2]

---

१ मज्झिम निकाय १४२।

२ मज्झिम निकाय १४२।

१५—सात प्रकार के सांघिक दान

"आनन्द ! यह सात सांघिक दक्षिणाएँ हैं। कौन-सी सात?
(१) बुद्ध प्रमुख दोनों संघों (भिक्षु और भिक्षुणी) को दान देता है—
यह पहली संघगत दक्षिणा है। (२) तथागत के परिनिर्वाण पर दोनों
संघों को दान देता है...। (३) भिक्षु संघ को दान देता है...।
(४) भिक्षुणीसंघ को दान देता है...। (५) मुझे संघ 'इतने भिक्षु-
भिक्षुणी दान देने के लिए' ऐसे दान देता है...। (६) मुझे संघ
में से 'इतने भिक्षु मिलें'...। (७) मुझे संघ में से 'इतनी भिक्षुणियाँ
दान देने के लिए मिलें।'

आनन्द ! भविष्य में भिक्षु नामधारी, काषाय मात्र धारण करनेवाले
दुःशील पापी होंगे। लोग संघ के नाम पर उन दुःशीलों को दान देंगे।
उस समय भी आनन्द ! मैं संघगत दक्षिणा को असंख्य, अपरिमित
फलवाली कहता हूँ।

आनन्द ! किसी तरह भी सांघिक दक्षिणा से व्यक्तिगत दक्षिणा को
मैं अधिक फलदायक नहीं मानता।"[२]

१६—दान के पाँच फल

"भिक्षुओ ! दान देने में पाँच फल होते हैं। कौन से पाँच?
(१) दाता बहुत जनों का प्रिय, सनाप होता है। (२) सत्पुरुष उसका
साथ करते हैं। (३) कल्याण-कीर्ति शब्द (यश) चारों ओर फैलता
है। (४) स्त्री भी धर्म में लीन होती है। (५) काया को छोड़ मरने के
बाद सुगति-स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होता है।

> ददमानो पियो होति सतं धम्मं अनुक्कमं।
> सन्तो नं सदा भजन्ति सञ्ञता ब्रह्मचारियो॥
> ते तस्स धम्मं देसन्ति सब्बदुक्खा पनूदनं।
> यं सो धम्मं इधञ्ञाय परिनिब्बाति अनासवो॥

---

१. मज्झिम निकाय १४२।

दान देने वाला सत्पुरुष धर्मों को करता हुआ सबका प्रिय होता है। सयत ब्रह्मचारी तथा सत्पुरुष सर्वदा उसका साथ करते है। वे सारे दुखो का नाश करनेवाले धर्म का उपदेश देते है, जिस धर्म को वह यहाँ जानकर आश्रव (चित्त मल) रहित हो परिनिवृत हो जाता है।'[१]

१७—किसका दाता क्या होता ?

"अन्नदो बलदो होति वत्थदो होति वण्णदो।
यानदो सुखदो होति दीपदो होति चक्खुदो॥

अन्न का दाता बल देने वाला होता है। वस्त्र का दाता वर्ण (रूप) देने वाला होता है। यान (सवारी) का दाता सुख देनेवाला होता है। प्रदीप का दाता चक्षु देनेवाला होता है।

सो च सब्बददो होति यो ददाति उपस्सय।
अमत ददो च सो होति यो धम्ममनुसासति॥

जो उपाश्रय (निवास) देता है, वह सब कुछ देने वाला होता है। जो धर्म का अनुशासन करता है, वह अमृत (निर्वाण) का देनेवाला होता है।

येन ददाति सद्धाय विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्न भजति अस्मि लोके परम्हि च॥

जो श्रद्धा और प्रसन्न चित्त से दान देता है, वही इस लोक और परलोक मे अन्न से परिपूर्ण होता है।

तस्मा विनेय्य मच्छेर दज्जा दान मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं पतिट्ठा होन्ति पाणिन॥

इसलिए कृपणता को त्याग निष्पाप (भिक्षुओं) को दान देना चाहिए। परलोक मे पुण्य प्राणियो का आधार होता है।"[२]

---

१ अगुत्तर नि० ५, ५, २।

२ सयुत्त नि० १, १, ४, २।

१८—पाँच प्रकार के काल दान

"भिक्षुओ ! पाँच काल दान हैं। कौन से पाच ? (१) आगन्तुक को दान देता है। (२) जानेवाले को दान देता है। (३) रोगी को दान देता है। (४) दुर्भिक्ष मे दान देता है। (५) नये अन्न और फलों को पहले शीलवान् (भिक्षुओ) को दान देता है।"[२]

१९—पाँच सत्पुरुष दान

"भिक्षुओ ! पाच सत्पुरुष दान देता हैं ? कौन से पाच ? (१) श्रद्धा से दान देता है। (२) सत्कार पूर्वक दान देता है। (३) समयानुसार दान देता है। (४) अनुग्रह के चित्त से दान देता है। (५) अपने तथा दूसरे को देखता हुआ दान देता है।"

२०—पाँच असत्पुरुष दान

"भिक्षुओ। पाँच असत्पुरुष दान हैं। कौन से पाँच ? (१) सत्कार पूर्वक नही देता है। (२) बे मन से देता है। (३) अपने हाथ से नही देता है। (४) सदा नहो देता है। (५) फल म विश्वास न करके देता है।"[३]

२१— आठ सत्पुरुप दान

"भिक्षुओ ! आठ सत्पुरुष दान । हैं कौन से आठ ? (१) पवित्र को देता है। (२) उत्तम को देता है। (३) समय से देता है। (४) विहित (कल्प्य) को देता है। (५) उचित को देता है। (६) सदा देता है। (७) चित्त को प्रसन्न करता है। (८) देकर प्रसन्न होता हैं।"[४]

२२—आठ दान के कारण

"आठ दान देने के कारण हैं—(१) आसक्त हो दान देता है। (२) भय से दान देता है। (३) 'मुझको उसने दिया है'—सोच, दान

---

१ अगुत्तर नि० ५, ४, ६।
२ अगुत्तर नि० ५, ५, ८।
३ अगुत्तर नि० ५, ५, ७।
४ अगुत्तर नि० ८, ४, ७।

देता है। (४) 'देगा' सोच दान देता है। (५) 'दान करना अच्छा है' सोच दान देता है। (६) 'मै पकाता हूँ, ये नही पकाते हैं, पकाते हुए न पकानेवालो को न देना अच्छा नही' सोच दान देता है। (७) 'यह दान देने से मेरा मगल कीर्ति शब्द (यश) फैलेगा' सोच दान देता है। (८) चित्त के अलकार, चित्त के परिष्कार के लिए दान देता है।"[1]

२३—देवताओ को भी दक्षिणा

"जिस प्रदेश में पण्डित पुरुष शीलवान्, सयमी, ब्रह्मचारियों को भोजन कराकर बास करता है, वहा जो देवता रहते है, उन्हे दक्षिणा देनी चाहिए। वह देवता पूजित हो, पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं। तब वह औरस पुत्र की भाति उसपर अनुकम्पा करते है। देवताओं से अनुकम्पित हो पुरुष सदा मगल देखता है।"[2]

२४—दान दो

(१)

"जो धर्मात्मा, शील सम्पन्न मनुष्य हैं, उनमे किनका पुण्य रातों दिन बढता है और कौन स्वर्ग को जाते हैं?"

"जो बाग लगाने वाले, वन रोपने वाले, पुल बाधने वाले, प्याऊ, कूप बनाने वाले तथा विहार देने वाले हैं—उन धर्मात्मा, शील सम्पन्नों का पुण्य रातों दिन बढता है और वे ही स्वर्ग जाते है।"[3]

(२)

"सत्य बोले, क्रोध न करे, माँगने पर थोडा रहते भी दे—इन तीन बातों के करने से आदमी देवताओं के पास जाता है।"[4]

(३)

"महर्षि (बुद्ध) ने जैसा कहा है यदि प्राणी उसे जान ले कि दान देने का फल महान् होता है, तो कजूसी को त्याग, प्रसन्न चित्त से

१ दीघ निकाय ३, १०।
२ दीघ नि० २, ३।
३ सयुत्त नि० १, १, ५, ७।
४ धम्मपद १७, ४।

समयानुसार भिक्षुओ को दान दे, जहा कि दान देने से महान् फल होता है। दान देने योग्य दाक्षिणेय को बहुत सा अन्न का दान दे, दायक इस मनुष्य लोक से च्युत होकर स्वर्ग जाते है और वे वहा जा दान के विपाक का अनुभव करते हुए अप्सराओ के साथ काम विलास का आनन्द पाते हैं।"[1]

(४)

"जो शाल्वती सुगत की शिष्या प्रमुदित हो अन्न, पान देती है, कृपणता को छोड शोकहारक सुखदायक, स्वर्गप्रद दान को देती है, वह निमल, निर्दोष मार्ग को या दिव्य बल और आयु को प्राप्त होगी। पुण्य की इच्छावाली वह सुखिनी और निरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग म प्रमोद करेगी।"[2]

(५)

"जो भोजन के समय द्वार पर आये हुए श्रमण ब्राह्मण को क्रोध के साथ बोलता है और नही देता है। उसे नीच (वसल) जानना चाहिए।"[3]

(६)

(१) सक्कच्च दान देथ = सत्कार पूर्वक दान दो।

(२) सहत्था दान देथ = अपने हाथ से दान दो।

(३) चित्तिकत दान देथ = मन से दान दो।

(४) अनपविद्ध दान देथ = न फेककर दान दो।

(५) आगमनादट्ठिका हुत्वा दान देथ=फल म विश्वास करके दान दो।

— * —

---

१ इतिवुत्तक १, ३, ६।

२ विनय पिटक ८, ४, ७।

३ सुत्तनिपात १ ७, १५।

विशेष—

(१) दान न देने योग्य वस्तुएँ

"भन्ते ! शराब नाच गीत बाजा, स्त्री, साँड, चित्र कर्म, हथियार, विष जंजीर, मुर्गा और सूअर, जाली पैमा या बटखरा का दान कभी नहीं करना चाहिए। जो इन दस चीजों का दान करता है, वह नरक को जाता है।" (मिलिन्द पञ्हो ७ ८, ७२ ।)

(२) दान में चार प्रकार की बाधाएँ

"महाराज ! दान में चार प्रकार के अन्तराय हैं —(१) बिना देखा हुआ, (२) उद्देश्य किया हुआ, (३) तैयार किया हुआ, (४) परिभोग के लिए उद्यत हुआ ।

'बिना देखा हुआ'—बिना किसी खास व्यक्ति को देने के लिए तैयार किए हुए दान को देखकर कोई आदमी देने वाले को भडका दे—'अरे, इसे किसी दूसरे को देने से क्या लाभ ?' और वह दान रुक जाय। यह बिना देखे हुए का अन्तराय है।

'उद्देश्य किया हुआ'—किसी खास व्यक्ति को कोई दान देने की इच्छा करे। कोई दूसरा आदमी आकर उसे भडका दे। तो यह उद्देश्य का अन्तराय कहा जाता है।

'तैयार किया हुआ'—कोई आदमी दान लेकर किसी को देने के लिए तैयार हो, उस समय कुछ ऐसी बाधा उपस्थित हो जाय जिससे दान नहीं दिया जा सके, तो यह तैयार किए हुए का अन्तराय कहा जाता है।

'परिभोग के लिए उद्यत हुआ'—दान किए जा चुकने पर पाने वाला उसका परिभोग करने के लिए उद्यत हो, उस समय ऐसी ही कोई बाधा उपस्थित हो जाय, जिससे वह उपभोग न कर सके, तो यह परिभोग के लिए उद्यत का अन्तराय कहा जाता है।" (मिलिन्द पञ्हो ४, २, १६)

(३) तीन प्रकार के दायक

"भिक्षुओ ! दायक (दाता) तीन प्रकार के होते है। कौन से तीन ? (१) दान दास (२) दान सहाय (३) दान पति।

"जो व्यक्ति अपने अच्छा खाता है किन्तु दूसरे को दान देते समय खराब चीजों को दान देता है, उसे 'दान दास' कहते हैं। जो अपने जैसा खाता है, दूसरे को भी वैसा ही देता है, उसे 'दान सहाय' कहत ह। जो व्यक्ति जिस किसी प्रकार व्यतीत करता है, कि तु दान देते समय यथा सम्भव उत्कृष्ट वस्तु दान करता है, उसे 'दान पति' कहते है।" (अगुत्तर नि० ३)

— * —

दूसरा परिच्छेद

शील

१ शील-पालन

(१)

"भिक्षुओ ! तीन प्रकार के सुखो को चाहने वालों को चाहिए कि वे शील की रक्षा करे। कौन से तीन ? (१) मै प्रशसित होऊँ (२) मुझे भोग पदार्थ प्राप्त हों (३) काया को छोड मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक मे उत्पन्न होऊँ।"[1]

(२)

"चन्दन, तगर, कमल या जूही—इन सभी की सुगन्धियों से शील की सुगन्ध बढकर है। यह जो तगर और चन्दन की गन्ध है, वह अल्प मात्र है। शीलवानो की उत्तम सुग ध देवताओ तक मे फैलती हैं।"

"दु शील और चित्त की एकाग्रता से हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन भी श्रेष्ठ है।"[2]

(३)

सील किरेव कल्याण
सील लोके अनुत्तर।

शील ही कल्याणकर है, लोक में शील सबसे बढकर है।[3]

१—इतिवुत्तक ७६।

२—धम्मपद ४, १२।

३—जातक १, ९।

२ पञ्चशील

(१)

“क्या सारिपुत्र ! सफेद वस्त्रधारी गृहस्थो के पाँच शिक्षा पदों को जानते हो जिससे कि वह चित्त सम्बन्धी कर्मों से इसी शरीर में सुख पूर्वक विहार करने के उपयोगी चारों ध्यानों का पूर्णतया लाभी, बिना कठिनाई के प्राप्त करने वाला होता है ? जिससे युक्त होने पर वह स्वयं अपना भविष्य कथन कर सकता है मुझे नरक नहीं (होगा)' पशु (योनि) नहीं, प्रेत्य विषय (भूत प्रेत्य) नहीं, अपाय = दुर्गति = विनिपात नहीं, मैं न गिरने वाला बोधि (ज्ञान) के मार्ग पर आरूढ स्रोतापन्न हूँ ? कौन से पाँच शिक्षा पदों से युक्त होने से ?

यहाँ सारिपुत्र ! आर्य श्रावक—

(१) प्राणातिपात (जीव हिंसा) से विरत होता है।

(२) अदिन्नादान (चोरी) से विरत होता है।

(३) व्यभिचार से विरत होता है।

(४) झूठ वचन से विरत होता है।

(५) सुरा, मेरय, मद्य (आदि) नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत होता है।

इन पाँच शिक्षापदो से सयत हो कर्म करता है।”[1]

(२)

“गृहपति ! जो जीवहिंसक है, वह जीवहिंसा के हेतु इस जन्म में भी और परलोक में भी भय, वैर को प्राप्त होता है। चित्त सम्बन्धी दुःख दौर्मनस्य का भी अनुभव करता है। जीवहिंसा से विरत रहने वाले मनुष्य के भय, वैर शान्त हो जाते हैं।

गृहपति ! जो विना दिये हुए लेने वाला (चोर) है, वह चोरी के कारण इस जन्म में भी, परलोक मे भी भय, वैर को प्राप्त होता है ..।

---

१ अगुत्तर नि० ५, ३, १।

जो व्यभिचारी है । जो मिथ्याभाषी है । जो सुरा, मेरय, मद्य आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करने वाला है।"[१]

(३)

"भिक्षुओ ! उपासक पॉच बातो से युक्त होने पर विशारदत्व स गिर जाता ह । कौन से पाच ? (१) जब वह जीवहिंसक होता है । (२) चोर होता है । (३) व्यभिचारी होता है । (४) मिथ्याभाषी होता है । (५) सुरा मेरय, मद्य आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करने वाला होता है ।

भिक्षुओ ! उपासक पॉच बातो से युक्त होने पर विशारद होता ह । कौन से पाँच ? (१) जब वह जीवहिंसा से विरत होता है । (२) चोरी स विरत होता है । (३) व्यभिचार से विरत होता है । (४) मिथ्या भाषण से विरत होता है । (५) सुरा मेरय मद्य आदि नशीली वस्तुओं के सेवन स विरत होता है ।"[२]

(४)

"जो हिंसा करता है, झूठ बोलता है, लोक म चोरी करता है, पर स्त्रीगमन करता है। जो पुरुष मद्यपान म लग्न होता है, वह इस प्रकार इसी लोक म अपने जड को खोदता है । हे पुरुष ! पापियों, असयमियों के विषय में ऐसा जान, मत तुझे लोभ और अधर्म चिरकाल तक दु ख मे बाधे रहे ।"[३]

(५)

"जिस प्रकार विमल चन्द्रमा आकाश मे जाते हुए सभी तारागण मे प्रभा से अत्य त ही सुशोभित होता है, उसी प्रकार श्रद्धावान, शीलसम्पन्न मनुष्य ससार के सभी मत्सरियों म अपने त्याग से अत्यन्त ही शोभता है।"[४]

---

१ अगुत्तर नि० ५, ३, १ ।
२ अगुत्तर नि० ५, ३, २ ।
३ धम्मपद १८, १२, १४ ।
४ अगुत्तर नि० ५, ४, १ ।

(६)

'किसी प्राणी को न मारे, न मारने की प्रेरणा करे और न किसी दूसरे को वध के लिये आज्ञा दे। सभी प्राणियों के प्रति दण्ड रहित होकर रहे जो कि संसार में जड और चेतन हैं। जानते हुए श्रावक किसी का कुछ भी विना दिये न ले, न चुराये और न चुराने के लिये किसी को आज्ञा दे। इस प्रकार सब तरह की चोरी त्याग दे। विज्ञ पुरुष आग से जलने के समान व्यभिचार को त्यागे। अक्षम होते हुए भी ब्रह्मचर्य रहे। अन्य की स्त्री का अतिक्रमण न करे। सभा या परिषद् में जाते हुए एक भी वचन झूठ न बोले, स्वयं न कहे और न कहने की आज्ञा दे। इस प्रकार सभी तरह से झूठ का त्याग करे। जिस गृहस्थ को यह धर्म अच्छा लगे, वह शराब को पीना बिल्कुल त्याग दे। शराब उन्मादक होती है-इसे जानकर न अपने पिये और न दूसरे को पीने के लिये कहे। शराब की नशा में आकर मूर्खजन पापों को करते है तथा दूसरे प्रमत्तों से भी कराते है। अतः उन्मादन, और मूर्खों के प्रिय शराब के इतने पापों को त्याग दे।"[१]

(७)

"पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता, न बन्धु लोग ही। जब मृत्यु पकडती है, तो ज्ञाति वाले रक्षक नहीं हो सकते। इस बात को जानकर पण्डित नर शीलवान् हो, निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे।"[२]

१ जीव-हिंसा

(१)

"भिक्षुओ! मैं जीवहिंसा (प्राणातिपात) को तीन प्रकार का कहता हूँ। (१) लोभ-हेतुक (लोभ के कारण होने वाली) (२) द्वेष-

---

१ सुत्तनिपात २६।

२ धम्मपद २०, १६।

हेतुक (द्वेष के कारण होने वाली), (३) मोह हेतुक (मोह के कारण होने वाली)।"[1]

(२)

"भिक्षुओ ! जीवहिंसा का आसेवन, वृद्धि और बहुलीकरण (बार बार करना) नरक की ओर ले जाने वाला है। पशु योनि की ओर ले जाने वाला है। प्रेत्य विषय की ओर ले जाने वाला है। जो कम जीवहिंसक है, वह जीवहिंसा के विपाक से मनुष्य होकर अल्प आयु वाला होता है।"[2]

(३)

"भिक्षुओ ! तीन बातों से युक्त मनुष्य बोझ फेंकने की भाँति नरक मे जाता है। कौन सी तीन ? (१) स्वयं जीवहिंसक होता है, (२) दूसरे को जीवहिंसा के लिए प्रेरित करता है, (३) जीवहिंसा के लिए आज्ञा देता है।"[3]

(४)

"सुख की चाह से जो सुख चाहने वाले प्राणियों को डण्डे से मारता है, वह मरकर सुख नही पाता है। सुख की चाह से जो सुख चाहने वाले प्राणियों को डण्डे से नही मारता, वह मरकर सुख पाता है।"[4]

(५)

"दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भयभीत होते है। अपने समान जानकर न मारे, न मारने की प्रेरणा करे।

सभी दण्ड से डरते हैं सबको जीवन प्रिय है, (इसे) अपने समान जानकर न मारे, न मारने की प्रेरणा करे।"[5]

---

१ अंगुत्तर नि० १०, १७। ४ धम्मपद १०, ३।
२ अंगुत्तर नि० ८, ४, १०। ५ धम्मपद १०, १२।
३ अंगुत्तर नि० ३, ६, ३।

(६)

"जो दण्डरहितों को दण्ड से पीड़ित करता है, निर्दोषों को दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन दस बातों में से (किसी) एक को प्राप्त होता है। कड़वी वेदना, हानि, अंग-भंग होना, कड़ी बीमारी, (या) चित्त-विक्षेप को प्राप्त होता है। या राजा से (उसे) दण्ड मिलता है। भयंकर निन्दा, ज्ञाति-बन्धुओं का विनाश, भोगों का क्षय अथवा उसके घर को अग्नि=पावक जलाता है। काया छोड़ने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न होता है।"[1]

२. चोरी

"भिक्षुओ! चोरी का आसेवन वृद्धि और बहुलीकरण, नरक की ओर ले जाने वाला है। पशु-योनि और प्रेत्य-विषय की ओर ले जाने वाला है। जो कम चोर है वह चोरी के विपाक से मनुष्य होकर भोग (पदार्थ) का दुखी होता है।"[2]

३. व्यभिचार

"प्रमादी व्यभिचारी मनुष्य की चार गतियाँ होती हैं—अपुण्य-लाभ, सुख से नींद का न आना, निन्दा और नरक। (अथवा) अपुण्य-लाभ, दुर्गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीता (स्त्री) से अल्परति, राजा का भारी दण्ड देना। इसलिए मनुष्य व्यभिचार (परस्त्रीगमन) न करे।"[3]

४. मृषावाद

(१)

"जो एक (पुरुष) इस नियम को लाँघ गया है, जो झूठ बोलने वाला है और जिसको परलोक का विचार नहीं है, वह पुरुष किसी भी पाप कर्म को कर सकता है।"

---

१. धम्मपद १०, ६-१२। ३. धम्मपद २२, ४-५।

२. अंगुत्तर नि० ८, ४, १०।

'असत्यवादी नरक में जाता है, जो करके 'नहीं किया' कहता है, वह भी नरक में ही जाता है। दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करने वाले मरकर बराबर हो जाते हैं।'[1]

(२)

"जो श्रमण ब्राह्मण अथवा अन्य याचक को झूठ बोलकर बहकाता है, उसे नीच जानो।"

(३)

"जो मनुष्य अपने लिये, दूसरे के लिए अथवा धन के लिये झूठी गवाही देता है, उसे नीच जानो।"

(४)

"भिक्षुओ! मृषावाद का आसेवन, वृद्धि और बहुलीकरण नरक की ओर ले जानेवाला है। पशु योनि और प्रेत्य विषय की ओर ले जानेवाला है। जो कम मिथ्याभाषी है, वह मिथ्या भाषण के विपाक से मनुष्य होकर मिथ्या भाषण का भागी होता है।"[3]

(५)

"ऐसे ही राहुल! 'जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, उसके लिये कोई भी पापकर्म अकरणीय नहीं'—ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिये राहुल! 'हँसी में भी नहीं झूठ बोलूँगा'—ऐसा अभ्यास करना चाहिये।"[4]

५ सुरा पान

(१)

"भिक्षुओ! सुरा पान का आसेवन, वृद्धि और बहुलीकरण नरक की ओर ले जाने वाला है। पशु योनि और प्रेत्य विषय की ओर ले जाने वाला

---

१ धम्मपद १७६।
२ सुत्तनिपात १,६,१४।
३ अंगुत्तर नि० ८, ४, १०।
४ मज्झिम नि० राहुलोवादसुत्त।

है। जो कम सुरा पान का सेवन करता है, वह सुरापान के विपाक से मनुष्य होकर पागलपन का भागी होता है।"[1]

(२)

"जो वारुणी (रत), निर्धन, मुँहताज, पियक्कड, प्रमादी होता है, पानी की तरह ऋण म अवगाहन करता है, वह शीघ्र ही अपने को व्याकुल करता है।

गृहपति पुत्र! शराब नशा आदि के सेवन म छ दुष्परिणाम हैं। (१) तत्काल धन की हानि। (२) कलह का बढना। (३) 'शराब' रोगों का घर है। (४) अयश उत्पन्न करने वाली है। (५ लज्जा का नाश करने वाली है। (६) बुद्धि को दुर्बल करती है।"

३ अष्टाग उपोसथ शील

(१)

"हर पक्ष की पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी तथा प्रातिहार्य पक्ष म प्रसन्न मन से अष्टाङ्ग से युक्त हो उपोसथ रहे। उपोसथ क दिन प्रात उठकर भिक्षु सघ को अन्न, पान (पेय) प्रसन्न चित्त से विज्ञ पुरुष यथाशक्ति दे।"[3]

(२)

"जो पूर्णिमा, अमावस्या, और जितनी भी पक्ष की अष्टमी है तथा प्रातिहार्य पक्ष म अष्टाङ्ग स युक्त हो उपोसथ वास करते हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं—ऐसा मैने अर्हत् लोगो से सुना है कि उन्हे यक्ष पीडित नहीं करते।'

(३)

"विशाखे! आठ अङ्गों से युक्त उपोसथ रहना महाफलवान्, महा-

---

१ अगुत्तर नि० ८, ४, १०। ३ सुत्तनि० २६।

२ दीघ नि० ३, ८।

गुणवान् महाज्योतिमान् और महापुण्यवान् होता है। विशाखे! कैसे रहा हुआ अष्टाङ्ग उपोसथ महाफलवान् होता है?

यहाँ विशाखे आय श्रावक इस प्रकार सोचता है—(१) 'अर्हन्त लोग जीवन पयन्त जीव हिंसा को त्यागकर जीवहिंसा से विरत हो, दण्ड त्यागी, शस्त्र त्यागी, लज्जावान्, दयालु, सब प्राणियो के हितेच्छु और अनुकम्पक हो विहार करते है। मै भी आज इस रात और दिन मे जीवहिंसा को त्यागकर, जीवहिंसा से विरत हो, दण्ड त्यागी, शस्त्र त्यागी, लज्जावान्, दयालु, सब प्राणियों का हितेच्छु और अनुकम्पक हो विहार करूँगा। इस बात से अर्हत् लोगों का अनुकरण करूगा और मेरा उपोसथ व्रत भी होगा। इस प्रथम अङ्ग से युक्त होता है।

(२) अहन्त लोग जीवन पर्यन्त बिना न दिये हुए को लेने (चोरी करने) को त्याग कर, चोरी से विरत हो, दिये हुये को लेने वाले, दिये हुए को चाहनेवाले, पवित्रात्मा हो विहार करते हैं। मै भी आज इस रात और दिन चोरी को त्याग विहार करूँगा। इस बात से अर्हत लोगो का अनुकरण करूँगा और मेरा उपोसथ व्रत भी होगा। इस दूसरे अग से युक्त होता है।

(३) अर्हत लोग जीवनपर्यन्त अब्रह्मचर्य को त्याग, ब्रह्मचारी, ग्रामीणधर्म मैथुन से विरत हो दूर रहने वाले होते हैं। मै भी इस तीसरे अङ्ग से युक्त होता है।

(४) अर्हन्त लोग जीवन पर्यन्त मृषावाद को त्याग, मृषावाद से विरत हो, सत्यवादी, सत्य चाहने वाले लोक मे मैत्री स्थापित करने वाले और विश्वासपात्र होते हे। मैं भी — इस चौथे अङ्ग से युक्त होता है।

(५) अहन्त लोग जीवन पर्यन्त सुरा, मेरय, मद्य, प्रमादकारक वस्तु के सेवन को त्याग, सुरा, मेरय, मद्य, प्रमाद कारक वस्तुओ से विरत रहते हैं। मै भी इस पॉचवे अङ्ग से युक्त होता है।

(६) अर्हन्त लोग जीवन पर्यंत एकाहारी, रात को भोजन न करने वाले, विकाल भोजन से विरत होते हैं। मै भी ~ इस छठे अङ्ग से युक्त होता है।

(७) अर्हन्त लोग जीवन पर्यन्त नाच, गीत, बाजा, अश्लील हाव भाव, माला, गन्ध, उबटन, के प्रयोग से अपने शरीर को सजने धजने से विरत रहते हैं। मै भी इस सातवे अङ्ग से युक्त होता है।

(८) अर्हत लोग जीवन पर्यन्त उच्चाशयन और महाशयन को त्याग उच्चाशयन एव महाशयन से विरत हो, चौकी अथवा तृण के बिछावन का सेवन करते हैं। मै भी इस आठवे अङ्ग युक्त होता है।

विशाखे ! ऐसे आठ बातों से युक्त रहा गया उपोसथ महाफलवान होता है। कितना महाफलवान होता है ? जैसे विशाखे जो इन सोलह जनपदो में उत्पन्न सात रत्नों के ऐश्वर्य एव आधिपत्य के साथ राज्य करे, जैसे कि—(१) अङ्ग (२) मगध (३) काशी (४) कोसल (५) वज्जी (६) मल्ल (७) चेतिय (८) वत्स (९) कुरु (१०) पाञ्चाल (११) मद्र (१२) सूरसेन (१३) अश्वक (१४) अवन्ति (१५) गान्धार और (१६) कम्बोज। यह अष्टाङ्ग से युक्त उपोसथ की सोलहवीं कला के बराबर भी नही है। सो किस कारण ? विशाखे ! मानुषी राज्य दिव्य सुख की तुलना में तुच्छ है। विशाखे ! मानुषी पचास वष है, यह चातुर्महाराजिक देवताओं की एक रातदिन है। उस रात से तीस रात का मास होता है। उस मास से बारह मासों का वष होता है। उस वर्ष से चातुमहाराजिक देवताओं की पाँच सौ वर्ष की आयु होती है। विशाखे ! यह सम्भव है कि यहाँ कोई स्त्री या पुरुष आठ अङ्गो से युक्त उपोसथ रह कर काया छोड मरने के पश्चात् चातुर्महाराजिक देवताओं की सहव्यत (स्थिति) में उपन्न हो। विशाखे ! इसके सम्बन्ध में ही मैंने कहा है—'मानुषो राज्य दिव्य सुख की तुलना में तुच्छ है।'

विशाखे ! जो मानुषी सौ वर्ष है, यह तावतिंस देवों का एक रात-दिन है। उस रात से तीस रात का मास होता है। उस मास से बारह मास का एक वर्ष होता है। उस वर्ष से हजार वर्ष तावतिंस देवों की आयु होती है। विशाखे ! यह सम्भव है कि यहा कोई स्त्री या पुरुष आठ अङ्गों से युक्त उपोसथ रहकर काया छोड मरने के पश्चात् तावतिंस देवताओं की सहव्यता में उत्पन्न हो। विशाखे ! इसके सम्बन्ध में ही मैने कहा है—'मानुषी राज्य दिव्य सुख की तुलना म तुच्छ है।'

विशाखे ! जो मानुषी दो सौ वष चार सो वष आठ सौ वर्ष – सोलह सौ वर्ष है, परनिर्मितवशवता देवों का एक रात्दिन है। उस रात से तीस रात का मास होता है और उस मास से बारह मास का वर्ष। उस वर्ष से सोलह हजार वर्ष की परनिर्मित वशवता देवों की आयु होती है।

विशाखे ! सम्भव है जो कोई स्त्री या पुरुष आठ अङ्गों से युक्त उपोसथ रहकर काया छोड मरने के पश्चात् परनिर्मित वशवर्ती देवों की सहव्यता मे उत्पन्न हो। विशाखे ! इसके सम्बन्ध म ही मैने कहा—'मानुषी राज्य दिव्य सुख की तुलना मे तुच्छ है।'[1]

(४) तीन प्रकार के उपोसथ

"विशाखे ! उपोसथ तीन प्रकार का होता है। कौन से तीन ? (१) गोपालक उपोसथ (२) निर्ग्रन्थ उपोसथ (३) आर्य उपोसथ।

विशाखे ! गोपालक उपोसक कैसा होता है ? जैसे विशाखे ! गाय चराने वाला ग्वाला सन्ध्या समय गायों को स्वामी को सौपकर इस प्रकार सोचता है—आज गाये अमुक अमुक जगह चरी हैं, आज अमुक अमुक जगह पानी पी हैं, कल वे अमुक अमुक जगह चरेंगी और अमुक अमुक जगह पानी पीयेंगी' इसी प्रकार विशाखे ! यहाँ कोई उपोसथ रहनेवाला व्यक्ति इस प्रकार सोचता है—'आज मै यह यह खाया हूँ, यह यह भोजन

१ अगुत्तर नि० ८, ५, २।

किया हूँ, कल यह यह खाऊँगा, यह यह भोजन करूँगा।' वह उस लोभ से प्रलोभित हो, उपोसथ रहता है। इस प्रकार विशाखे! गोपालक उपोसथ होता है। इस प्रकार होने से विशाखे गोपालक उपोसथ महाफलवाला नही होता।

कैसे विशाखे! निर्ग्रंथ उपोसथ होता है? विशाखे! निर्ग्रंथ एक प्रकार के श्रमण होते हैं। वे (अपने) शिष्यों को इस प्रकार उपदेश देते हैं—'हे पुरुष! जो पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की दिशा मे एक सौ योजन के भीतर प्राणी है, उनमे दण्ड रहित हो विहरो।' यहाँ वे कुछ प्राणियों के लिये अनुदया और अनुकम्पा का उपदेश देते हैं, तो कुछ के लिये दयारहित और अनुकम्पारहित का। उपोसथ के दिन वे अपने शिष्यों को इस प्रकार उपदेश देते हैं—'हे पुरुष। तुम वस्त्रों को फेंककर इस प्रकार कहो—'न मै कुछ हूँ, न किसी का हूँ और न मेरा कुछ है, न मैं कही का हूँ।' उसके माता पिता जानते हैं कि यह हमारा पुत्र है, वह भी जानता है कि ये हमारे माता पिता हैं। पुत्र स्त्री भी जानते हैं कि यह हमारा पालन पोषण करने वाला है, वह भी जानता है कि ये मेरे पुत्र दारा हैं। दायक जानते हैं कि ये हमारे आर्य हैं, वह भी जानता है कि ये मेरे दायक हैं। वे इस प्रकार जिस समय कहते हैं झूठ ही कहते हैं। मै इसको झूठ वचन ही कहूँगा। वह उस रात्रि को बिता बिना दिए हुए भोग का उपभोग करता है, इसमे मै चोरी ही कहूँगा। विशाखे! इस प्रकार निर्ग्रंथ उपोसक होता है। इस प्रकार होने से विशाखे! निर्ग्रन्थ उपोसथ महाफलवाला नही होता।''

कैसे विशाखे! आर्य उपोसथ होता है। विशाखे! वह क्लेश युक्त चित्त से शुद्ध होता है। कैसे विशाखे! क्लेश युक्त चित्त से शुद्ध होता है?

(१) यहाँ विशाखे! आर्य श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है—'वह भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध (आठ) विद्या तथा (पद्रह)

आचरण से युक्त, सुगत, लोक विद्, पुरुषों के दमन करने मे अनुपम चाबुक सवार, देवताओं और मनुष्यों के उपदेशक बुद्ध भगवान् हैं।' तथागत के अनुस्मरण से उसका चित्त प्रसन्न होता है, उसे प्रमोद होता है। जो चित्त के क्लेश हैं, वे शा त हो जाते हैं। जैसे विशाखे! गन्दा सिर साफ किया जाता है। कैसे विशाखे! ग दा सिर साफ किया जाता है? कघी, मिट्टी, जल और उसके लिये उपयुक्त उद्योग से। इस प्रकार विशाखे! क्लेश युक्त चित्त शुद्ध होता है। विशाखे! इसे कहते हैं कि आर्य श्रावक ब्रह्म उपोसथ करता है। ब्रह्मा के साथ रहता है और ब्रह्मा के प्रति चित्त को प्रसन्न करता है। प्रमोद उत्पन्न करता है। जो चित्त के बन्धन हैं, वे शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार विशाखे! क्लेश युक्त चित्त शुद्ध होता है।

(२) यहा विशाखे! आर्य श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है—'भगवान् का धर्म स्वाख्यात (सुन्दर ढग से कहा गया) है। वह इसी शरीर में फल देने वाला है, कालान्तर म नही, शीघ्र फलप्रद है, यहीं दिखाई देने वाला है। निर्वाण के पास ले जाने वाला है, विज्ञ पुरुषों को अपने भीतर ही विदित होने वाला है।' जैसे विशाखे! ग दा शरीर शुद्ध होता है। कैसे विशाखे! गन्दा शरीर शुद्ध होता है? स्वस्ति चूर्ण (एक प्रकार का साबुन), जल तथा उसके लिये उपयुक्त उद्योग से। धर्म को अनुस्मरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। जो चित्त के ब धन हैं, वे शा न हो जाते हैं। विशाखे! इसे कहते हैं कि आर्य श्रावक धर्म उपोसथ करता है, धम के साथ रहता है, और धर्म के प्रति चित्त को प्रसन्न करता है। प्रमोद उत्पन्न करता है।' इस प्रकार विशाखे! क्लेश युक्त चित्त शुद्ध होता है।

(३) यहाँ विशाखे! आर्य श्रावक सघ का अनुस्मरण करता है—'भगवान् का श्रावक सघ सुमार्गारूढ है, भगवान् का श्रावक सघ सरल मार्ग पर आरूढ है, भगवान् का श्रावक सघ न्याय मार्ग पर आरूढ है,

भगवान् का श्रावक सघ ठीक मार्ग पर आरूढ है, यह चार पुरुष युगल और आठ पुरुष पुद्गल हैं, यही भगवान् का श्रावकसघ है, जो कि आह्वान करने योग्य है, पाउना बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोडने योग्य है, और लोक के लिये पुण्य बोने का क्षेत्र है।' इस प्रकार सघ को स्मरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। जैसे विशाखे! मैला वस्त्र साफ किया जाता है! कैसे विशाखे! मैला वस्त्र साफ किया जाता है? खार (=एक नमकीन पदार्थ), गोबर, जल और उसके लिये उपयुक्त उद्योग से। विशाखे! इसे कहते हैं कि आर्य श्रावक सघ उपोसथ करता है, सघ के साथ रहता है, और सघ के प्रति चित्त को प्रसन्न करता है। इस प्रकार विशाखे! क्लेश युक्त चित्त शुद्ध होता है।

(४) यहा विशाखे! आर्य श्रावक अपने अखण्डित, निर्दोष, निर्मल, परिशुद्ध सेवनीय, विज्ञ प्रशसित, आर्य कान्त, शीलो का अनुस्मरण करता है। इस प्रकार उसके शीलों का स्मरण करने से (उसका) चित्त प्रसन्न होता है। जैसे विशाखे! मैला आदर्श (ऐनक) शुद्ध होता है। कैसे विशाखे! मैला आदर्श शुद्ध होता है? तेल, खारी, बालों का गुच्छा (बालण्डिक = ब्रश) और उसके लिए उपयुक्त उद्योग से। विशाखे! इसे कहते हैं कि शील उपोसथ करता है, शील के साथ रहता है, शील के प्रति चित्त को प्रसन्न करता है। विशाखे! क्लेश युक्त चित्त इस प्रकार शुद्ध होता है।

(५) यहा विशाखे! आर्य श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है—(१) चातुर्महाराजिक देवता हैं (२) तावतिंस के देवता हैं (३) याम, (४) तुषित, (५) निर्माण रति (६) परनिर्मित वशवर्ती (७) ब्रह्मकायिक (८) उनसे ऊपर के देवता है। जिस प्रकार की श्रद्धा से वह देवता यहाँ से मरकर वहाँ उत्पन्न हुए हैं, मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है। शील, श्रुत, त्याग और मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा है। इस

प्रकार विशाखे ! आर्य श्रावक के अपने और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा को स्मरण करते (उसका) चित्त प्रसन्न होता है । जैसे विशाखे ! मैला सोना साफ किया जाता है। कैसे विशाखे ! मैला सोना साफ किया जाता है ? आग, नमक, गेरू, नली, सँडसी और उसके लिये उपयुक्त उद्योग से। विशाखे ! इसे कहते हैं कि आर्य श्रावक देव उपोसथ करता है।[1]

(६) यहाँ विशाखे ! आर्य श्रावक इस प्रकार सोचता है–अर्हन्त जीवन पर्यन्त जीवहिंसा को त्यागकर जीवहिंसा से विरत हो विहार करते ह। मै भी आज इस रात और दिन जीवहिंसा को त्यागकर जीवहिंसा से विरत हो विहार करूँगा । इस प्रकार विशाखे ! आर्य उपोसथ होता है। विशाखे ! ऐसा आर्य उपोसथ महाफलवान् होता है।"[2]

५ शील पालन के पाँच फल

"गृहपतियो ! दुराचार के कारण दुःशील के लिए यह पाँच दुष्परिणाम हैं। कौन से पाँच ? (१) गृहपतियो ! दुराचारी आलस्य करके बहुत से अपने भोगों को खो देता है। दुराचारी का दुराचार के कारण यह पहला दुष्परिणाम है।

(२) दुराचारी की निन्दा होती है ।

(३) दुराचारी आचार भ्रष्ट (पुरुष) क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभा म जाता है, प्रतिभा रहित, मूक होकर ही जाता है —।

(४) मूढ रह मृत्यु को प्राप्त होता है —।

(५) काया छोड मरने के बाद —नरक म उत्पन्न होता है ।

गृहपतियो ! शीलवान् के लिये शील के कारण पाँच सुपरिणाम हैं। कौन से पाँच ?

---

१ देखिये शेष ऊपर जैसा। २ अगुत्तर निकाय ३, २, १०।

(१) गृहपतियो ! शीलवान् अप्रमाद न कर बड़ी भोग राशि को इसी जन्म मे प्राप्त करता है। शीलवान् को शील के कारण यह पहला सुपरिणाम है।

(२) शील्वान् का मंगल यश फैलता है।

(३) जिस किसी सभा मे जाता है, मूक न हो विशारद बनकर जाता है।

(४) मूढ न हो मृत्यु को प्राप्त होता है।

(५) काया छोड मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। गृहपतियो ! शीलवान् के शील के कारण ये पाँच सुपरिणाम हैं।"[1]

—✽—

१ उदान ८, ६। दीघनि० २, ३। विनय पि० ६, ४, ७।

तीसरा परिच्छेद

शरण

१ त्रिरत्न की शरण

(१)

"भन्ते ! चुन्द नामक राजकुमार जो मेरा भाई है, वह ऐसा कहता है—'जो कोई स्त्री या पुरुष बुद्ध, धर्म, सघ की शरण गया होता है, जीवहिंसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्याभाषण और सुरा, मेरय, मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं के सेवन से विरत होता है। वह काया को छोड मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो उत्पन्न होता है, दुर्गति को नही।' भन्ते ! मैं भगवान् से पूछती हूँ—भन्ते ! किस प्रकार शास्ता पर प्रसन्न हो काया को छोड मरने के बाद सुगति प्राप्त हो उत्पन्न होता है, दुर्गति को नहीं ? किस प्रकार धर्म तथा सघ पर प्रसन्न हो ? किस प्रकार शीलों का पूण करने वाला काया को छोड मरने के बाद सुगति में उत्पन्न होता है, दुर्गति में नही ?"

"चुन्दि ! जो बिना पैर वाले, दो पैर वाले, चार पैर वाले और बहुत पैर वाले, रूपी (रूपवान), अरूपी, सञ्ञी (चेतन), असञ्ञी तथा न सञ्ञी असञ्ञी सत्व हैं, वे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध पर अग्र प्रसन्न होते है। चुन्दि ! जो बुद्ध पर अग्र प्रसन्न होते हैं, उनका फल भी अग्र होता है।

चुन्दि ! जो सस्कृत असस्कृत धर्म एव विराग धर्म को ही अग्र कहता है, जैसे कि मद को शान्त करने वाला, पिपासा बुझाने वाला, राग को नाश करने वाला, ससारचक्र के बन्धन को काटने वाला,

तृष्णा की क्षय, विराग, निरोध, निर्वाण है। चुन्द ! जो विराग धर्म मे अग्र प्रसन्न होते हैं, उसका फल भी अग्र होता है।

चुन्द ! जो सघ, गण अथवा तथागत का श्रावक सघ है, उसे अग्र कहता है, जैसे चार पुरुष युगल और आठ पुरुष पुद्गल है—यही भगवान् का श्रावक सघ है जो कि आह्वान करने योग्य है, दान देने योग्य है, पाहुन बनाने योग्य है, हाथ जोडने योग्य है, और लोक के लिए पुण्य बोने का क्षेत्र है। चुन्द ! जो सघ मे अग्र प्रसन्न होते हैं, उसका फल भी अग्र होता है।

चुन्द ! जो आर्य कान्त (प्रिय) शील हैं, उन्हे अग्र कहता है, जैसे, अखण्डित, निर्दोष, निमल, परिशुद्ध, सेवनीय, विज्ञ प्रशसित और समाधि के लिए पूर्णता को पहुँचानेवाला है, चुन्द ! जो आर्य कान्त शीलो का पालन करने वाला है, उसका अग्र फल होता है।

जो अग्र प्रसन्न हैं, अग्र धर्म को जानते हैं, बुद्ध पर अग्र प्रसन्न हैं, वे सर्वोत्तम दाक्षणेय हैं। अग्र दान देने से पुण्य अधिक बढता है। आयु, वर्ण, यश, कीर्ति, सुख, और बल भी। अग्र दान करने वाला मेधावी, अग्र धर्म स समाहित हो देव अथवा मनुष्य होकर अग्र (श्रेष्ठता) प्राप्त हो प्रमोद करता है।"[1]

(२)

"मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (उद्यान) वृक्ष, चैत्य (चौरा) आदि बहुत चीजो की शरण ग्रहण करते हैं लेकिन यह शरण ग्रहण करना कल्याणकर नही, उत्तम नही। इन शरणो को ग्रहण करके कोई सारे दु ख से मुक्त नही हो सकता।

जो बुद्ध, धर्म, सघ की शरण ग्रहण करता है, जो चारों आर्य सत्यों को भली प्रकार प्रज्ञा से देखता है—(१) दु ख (२) दु ख की उत्पत्ति

१ अगुत्तर निकाय ५, ४, २।

(३) दु ख का विनाश (४) दु ख के उपशमन की ओर ले जाने वाला आर्य अष्टांगिक मार्ग। उसका यह शरण ग्रहण करना कल्याणकर है, यही उत्तम शरण है। इस शरण को ग्रहण करके (मनुष्य) सारे दु खों से मुक्त होता है।"[1]

(३)

"जो कोई बुद्ध, धम और सघ की शरण गये हैं, वे अपाय भूमि (नरक) म नहीं पडेगे। मनुष्य शरीर को छोडकर वे देव शरीर को पावेंगे।"[2]

२—उपासक कौन है ?

"भन्ते ! कितने से (कोई) उपासक होता है ?"

"महानाम ! जब (वह) बुद्ध की शरण जाता है, धर्म की शरण जाता है, सघ की शरण जाता है। इतने से महानाम ! (कोई) उपासक होता है "[3]

३—उपासक शीलवान् कब ?

"भन्त ! कितने से उपासक शीलवान् होता है ?"

"जब महानाम ! (१) जीवहिंसा से विरत होता है। (२) चोरी से विरत होता है। (३) व्यभिचार से विरत होता है। (४) मिथ्या भाषण म विरत होता है ! (५) सुरा, मेरय, मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं के सेवन से विरत होता है। महानाम ! इतने से उपासक शीलवान् होता है।"

"भन्ते ! कितने से उपासक अपने हित के लिए मार्गारूढ होता है, दूसरे के लिए नहीं ?"

---

१ धम्मपद १४, १०, १४।

२ दीघनिकाय २, ७, ३।

३ अंगुत्तर नि० ८, ३, ५।

"जब तक महानाम! उपासक (१) अपने ही श्रद्धा से युक्त होता है, किन्तु दूसरे को श्रद्धा के लिए उत्तेजित नही करता (२) अपने ही शील से युक्त होता है, किन्तु दूसरे को शील सम्पदा के लिए उत्तेजित नही करता। (३) अपने ही त्यागी (दानी) होता है, किन्तु दूसरे को त्याग के लिए उत्साहित नही करता। (४) अपने ही भिक्षु लोगों के दर्शन की इच्छा करता है, कि तु दूसरे को भिक्षु लोगो के दर्शन के लिए उत्साहित नही करता। (५) अपने ही सद्धर्म को श्रवण करता है, किन्तु दूसरे को उत्साहित नही करता। (६) सुने हुए धर्मों का धारण करने वाला होता है। (७) सुने हुए धर्म की, अर्थ के लिए रक्षा करता है। (८) अथ और धर्म को जानकर धर्मानुसार आचरण करता है। इतने से महानाम! उपासक अपने हित के लिए मार्गारूढ होता है, दूसरे के लिए नही।"

"भन्ते! कितने से उपासक अपने तथा दूसरे के हित के लिए मार्गारूढ होता है?"

"जब महानाम! उपासक अपने श्रद्धा से युक्त होता है और दूसरे को भी उत्साहित करता है शील त्याग दूसरे को भी धर्मानुसार आचरण करने के लिए उत्साहित करता है। इतने से महानाम! उपासक अपन तथा दूसरे के हित के लिए मार्गारूढ होता है।"[१]

४—त्रिरत्न प्रशसक उपासक

"भिक्षुओ! आठ बातों से युक्त उपासक के लिए सघ चाहे तो पात्र औंधा कर दे। कौन से आठ? (१) जो भिक्षुओं के अलाभ की कोशिश करता है, (२) भिक्षुओं का अनर्थ चाहता है, (३) भिक्षुओं के अ वास का प्रयत्न करता है, (४) भिक्षुओं को कोसता तथा बुरा भला कहता हे। (५) भिक्षु को भिक्षु से अलग करता है, (६) बुद्ध की नि दा करता है, (७) धर्म की निन्दा करता है, (८) सघ की निन्दा करता है। भिक्षुओ! इन आठ बातों से युक्त उपासक के लिए सघ चाहे तो पात्र औंधा कर दे।

१ अगुत्तर नि ८, ३, ५।

भिक्षुओ ! आठ बातो से युक्त उपासक के लिए सघ चाहे तो पात्र सीधा कर दे । कौन से आठ ? (१) जो भिक्षुओं का अलाभ नही चाहता, (२) भिक्षुओ का अनर्थ नही चाहता, (३) भिक्षुओं का अवास नहीं चाहता, (४) भिक्षुओ को कोसता तथा बुरा भला नही कहता, (५) भिक्षु से भिक्षु को अलग नही करता, (६) बुद्ध की प्रशशा करता है, (७) धर्म की प्रशसा करता है, (८) सघ की प्रसशा करता है । भिक्षुओ ! इन आठ बातों से युक्त उपासक के लिए सघ चाहे तो पात्र ही सीधा कर दे ।"[1]

५—तीन प्रकार के उपासक

"भिक्षुओ ! पाच बातों से युक्त उपासक उपासक चाण्डाल, उपासक मल, और उपासक प्रतिकुष्ट (नीच) होते ह । कौन से पाँच ? वे अश्रद्धावान् होते है, दु शील होते हैं, कौतूहल माङ्गल्कि (शुभाशुभ नक्षत्रों का विचार करने वाले) होते हैं । मगल (शुभ) को देखकर काम करते हैं, बिना मङ्गल के नही । यहाँ होते हुए भी बाहर जाकर (दूसरे धर्मावलम्बियों को) दक्षिणेय को ढूँढते है । वहाँ भी पहले उन्हीं को दान मान आदि करते हैं । भिक्षुओ ! इन पाच बातो से युक्त उपासक उपासक चाण्डाल, उपासक मल और उपासक प्रतिकुष्ट (नीच) होते हैं ।

भिक्षुओ ! पाँच बातो से युक्त उपासक उपासक रत्न, उपासक पद्म और उपासक पुण्डरीक होते हे । कौन से पाच ? वे श्रद्धावान् होते हैं, शीलवान् होते हें, कौतूहल माङ्गलिक नही होते है, बिना मगल को देखे काम करते हैं, यहाँ से और बाहर से भी दक्षिणेय को नही ढूँढते । दान मान आदि करते हैं । भिक्षुओ ! इन पाँच बातों से युक्त उपासक उपासक रत्न, उपासक पद्म और उपासक पुण्डरीक होते हैं ।"[2]

विशेष—

उपासक के दस गुण

"महाराज ! उपासक म ये दस गुण होने चाहिए । महाराज ! (१)

---

१ अगुत्तर नि० ८, ६, ७ । २ अगुत्तर नि० ५, ३, ५ ।

उपासक अपने भिक्षुओं के साथ सहानुभूति रखता है। (२) धर्म को सबसे ऊँचा समझता है। (३) यथा शक्ति दान देता है। (४) धर्म को गिरते देख उसे उठाने का पूरा उद्योग करता है। (५) सत्य धारणा वाला होता है। (६) कौतूहल के मारे जीवन भर दूसरे मतों के फंदे में नहीं पड़ता। (७) शरीर और वचन का पूरा संयम करता है। (८) शान्ति चाहने वाला होता है। (९) एकता प्रिय होता है। (१०) केवल दिखाने के लिए धर्म का आडम्बर नहीं करता, किंतु यथार्थ में बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आया होता है।" [मिलिन्द पञ्हो ४, १, १]

६—पाँच अकरणीय व्यापार

"भिक्षुओ! उपासक को चाहिये कि वह इन पाँच व्यापारों में से किसी एक को भी न करे। कौन से पाँच? (१) हथियारों का व्यापार (२) जानवरों का व्यापार (३) मांस का व्यापार (४) शराब का व्यापार और (५) विष का व्यापार।"[1]

७—शरण-त्रय

"मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
मैं संघ की शरण जाता हूँ।
दूसरी बार भी मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
" मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
" मैं संघ की शरण जाता हूँ।
तीसरी बार भी मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ।
" मैं धर्म की शरण जाता हूँ।
" मैं संघ की शरण जाता हूँ।"[2]

— * —

१ अंगुत्तर नि० ५, ३, ७। २ खुद्दक पाठ १, १।

चौथा परिच्छेद

यज्ञ

१ राज्य-यज्ञ

कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण गण के साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी, जहा भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर उसने भगवान् के साथ समोदन किया। खाणुमत के ब्राह्मण गृहस्थों मे कोई कोई भगवान् को अभि वादनकर एक ओर बैठ गये। कोइ कोई सम्मोदन कर, कोई कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोडकर चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए कुटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् से कहा— हे गौतम! मैने सुना है कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध-यज्ञ सम्पदा को जानते हैं। भो! मै सोलह परिष्कार सहित यज्ञ सम्पदा को नही जानता। मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार सहित त्रिविध यज्ञ सम्पदा का मुझे उपदेश करे।

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरह मन म करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" कुटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् से कहा। भगवान् बोले—

"पूर्वकाल मे ब्राह्मण! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदी वाला, बहुत वित्त उपकरण (साधन) वाला, बहुत धन धान्य भरे-कोश कोष्ठागारवाला महाविजित नामक राजा था। ब्राह्मण! उस राजा महाविजित को एकान्त म विचार करते हुए यह चित्त म ख्याल उत्पन्न हुआ— 'मुझे मनुष्यों के विपुल भोग प्राप्त हैं, मैं महान् पृथ्वी मण्डल को जीतकर शासन करता हूँ। क्यों न मै महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकाल

तक मेरे हित सुख के लिए हो ।' तब ब्राह्मण ! राजा महाविजित ने पुरोहित को बुलाकर कहा—'ब्राह्मण ! यहाँ एकान्त म बैठ विचार करते हुए मेरे चित्त में यह ख्याल उत्पन्न हुआ —क्यों न मै महायज्ञ करूं । ब्राह्मण ! मै महायज्ञ करना चाहता हूँ । आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो ।' ऐसा कहने पर ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मण ने राजा महाविजित से कहा—'आप का देश सकण्टक, उत्पीडा सहित ह । राज्य मे गावो की लूट भी दिखाई पडती है । बटमारी भी देखी जाती है । आप ऐसे सकण्टक, उत्पीडा सहित देश से कर लेते हैं । इससे आप इस देश के अकृत्यकारी (बुरा करने वाले) हैं । सम्भवत आपका विचार हो, डाकुओं के कील को हम बध, बन्धन, हानि, निन्दा, निर्वासन से उखाड देगे । लेकिन इस लूट मार रूपी कील को, इस तरह भलीभाँति नही उखाडा जा सकता । जो मारने से बच रहेगे, वह पीछे राजा के जनपद को सतायेगे । ऐसे लूट मार रूपी कील का इस उपाय से भली प्रकार उन्मूलन हो सकता है कि राजन् ! जो कोई आप के जनपद में कृषि, गोपालन करने का उत्साह रखते हैं, उनको आप बीज और भोजन प्रदान करे । जो वाणिज्य करने का उत्साह रखते हैं, उन्हे आप पूँजी दे । जो राजा की नौकरी करने का उत्साह रखते हैं, उन्हे आप भत्ता वेतन दे । इस प्रकार वह लोग अपने काम मे लगे, राजा के जनपद को नही सतायेंगे । आपको महान् धन धान्य की राशि प्राप्त होगी, जनपद भी पीडा रहित, कण्टक रहित, क्षेम युक्त होगा । मनुष्य भी गोद मे पुत्रों को नचाते से, खुले घर विहार करेंगे ।'

राजा महाविजित ने पुरोहित ब्राह्मण को—'अच्छा भो ब्राह्मण !' कहा । राजा के जनपद में जो कृषि गो रक्षा करना चाहते थे, उन्हे राजा ने बीज, भोजन दिया । जो राजा के जनपद मे वाणिज्य करने के उत्साही थे, उ हें पूँजी दिया । जो राजा के जनपद में राजकीय नौकरी करने में उत्साही हुए, उनका भत्ता वेतन ठीक कर दिया । उन मनुष्यों ने अपने अपने काम मे लग, राजा के जनपद को नहीं सताया । राजा को महाधन-

राशि प्राप्त हुई। जनपद अ कण्टक, अ-पीडित क्षेम युक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोद में पुत्रों को नचाते से, खुले घर विहार करने लगे।

ब्राह्मण ! तब राजा महाविजित ने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाकर कहा—"भो ! मैने लूट पाट रूपी कील को उखाड दिया। मेरे पास महाराशि है। हे ब्राह्मण ! मै महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो।'

२. होम-यज्ञ

तो आप ! जो आपके जनपद मे ग्रामीण या नागरिक कार्यों म लगे हुए क्षत्रिय हैं, आप उन्हे कहे—'मै भो ! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (आज्ञा) करे जो कि मेरे चिरकाल तक हित-सुख के लिए हो।' जो आपके जनपद म ग्रामीण या नागरिक सभासद् हैं—। जनपद में ग्रामीण या नागरिक ब्राह्मण महाशाल (धनी) है। ग्रामीण या नागरिक गृहपति (वैश्य) धनी हैं। राजा महाविजित ने ब्राह्मण पुरोहित को—'अच्छा भो !' कहकर, जो राजा के जनपद म क्षत्रिय ब्राह्मण गृहपति धनी थे, उन्हे राजा महाविजित ने आमन्त्रित किया—भो मै ! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करे, जो कि चिरकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो।' 'राजा ! आप यज्ञ करे, महाराज ! यह यज्ञ का काल है।' ब्राह्मण ! यह चारो अनुमति पक्ष उसी यज्ञ के चार परिष्कार होते हैं।

"वह राजा महाविजित आठ अङ्गों से युक्त था। (१) दोनों ओर से सुजात था, माता से भी, पिता से भी, मातामह और पितामह की सात पीढियों से भी। (२) अभिरूप, दर्शनीय दर्शन के लिए अवकाश न रखनेवाला। (३) शीलवान्। (४) आढ्य, महाधनवान्, महाभोगवान्, बहुत चाँदी सोने वाला, बहुत वित्त उपकरणवाला, बहुत धन धान्य वाला परिपूर्ण कोश-कोष्ठागार वाला, (५) बलवती चतुरंगिनी सेना से युक्त, आश्रमके लिए अपवाद प्रतिकार के लिए यश से मानो शत्रुओं को तपाता सा

था। (६) श्रद्धालु, दायक, दानपति, श्रमण, ब्राह्मण दरिद्र आथिक बन्दीजन याचकों के लिए खुले द्वार वाला, प्याऊ सा हो, पुण्य करता था। (७) बहुश्रुत, सुने हुओं, कहे हुओं का अर्थ जानता था—'इस कथन का यह अर्थ है, इस कथन का यह अर्थ है।' (८) पण्डित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य वर्तमान सम्बन्धी बातों को सोचने मे समर्थ था। राजा महा विजित इन आठ अगो से युक्त था। यह आठ अग उसी यज्ञ के आठ परिष्कार होते हैं।

पुरोहित ब्राह्मण चार अगो से युक्त था—(१) दोनों ओर से सुजात था। (२) अध्यापक, मन्त्रधर, त्रिवेद पारगत था। (३) शील्वान् था। (४) पाण्डत, व्यक्त, मेधावी, दक्षिणा ग्रहण करने वालो म प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित इन चार अगो से युक्त था। वह चार अग भी उसी यज्ञ के परिष्कार होते हैं।

तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मण ने पहले राजा महाविजित को तीन विधियो का उपदेश किया। (१) यज्ञ करने की इच्छा वाले आपको सम्भवत कहीं खेद हो—'बडी धनराशि चली जायेगी' सो आप राजा का यह खेद नही करना चाहिए। (२) यज्ञ करते हुए आप राजा को सम्भवत कही खेद हो—'बडी धनराशि चली जा रही है' (३) यज्ञ कर चुकने पर आप राजा को सम्भवत कही खेद हो—'बडी धन राशि चली गई' सो यह खेद आप को न करना चाहिए। ब्राह्मण! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मण ने राजा महाविजित को यज्ञ करने से पहले तीन विधियाँ बतलाई।

तब ब्राह्मण पुरोहित ब्राह्मण ने यज्ञ से पूर्व ही राजा महाविजित क हृदय से प्रतिग्राहकों के प्रति उत्पन्न होने वाले इस प्रकार के विप्रतिसार (चित्त को बुरा करना) हटाये (१) आपके यज्ञ म जीवहिंसक भी आवेंगे, अहिंसक भी। जो जीवहिंसक हैं, उनकी जीवहिंसा उन्ही के लिए है, जो वह अहिंसक हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप उनके चित्त को भीतर से प्रसन्न करे। (२) आपके यज्ञ में चोर भी

आवेंगे, अचोर भी, जो वहाँ चोर हैं, वह अपने लिए हैं, जो वहाँ अचोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें मोदन करें, आप अपने चित्त को भीतर से प्रसन्न करें। (३) व्यभिचारी अव्यभिचारी भी। (४) मिथ्याभाषी — मिथ्या भाषण से विरत भी। (५) पिशुनवाची (चुगुलखोर) पिशुन वचन से विरत भी। (६) कटु वचन वाले कटुवचन से विरत भी। (७) बकवादी — बकवाद से विरत भी। (८) लोभी लोभ से रहित भी। (९) द्रोही द्रोह से विरत भी। (१०) झूठे मत वाले सम्यक् दृष्टि वाले भी। जो वहाँ झूठे मतवाले (मिथ्या दृष्टि) हैं, वह अपने ही लिए हैं, जो वहा सम्यक् दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्त को भीतर से प्रसन्न करें। ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मण ने यज्ञ से पूर्व ही राजा महाविजित के हृदय से प्रतिग्राहकों (दान ग्रहण करने वालों) के प्रति उत्पन्न होने वाले—इन दस प्रकार के विप्रतिसार (चित्तविकार) अलग कराये।

तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मण ने यज्ञ करते समय राजा महाविजित के चित्त का सोलह प्रकार से समुत्तेजन, सप्रहर्षण किया—(१) सम्भवत यज्ञ करते समय आप राजा को कोई बोलने वाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किन्तु उसने ग्रामीण और नागरिक कार्यों में लगे हुए क्षत्रियों को आमन्त्रित नहीं किया, तो भी यज्ञ कर रहा है। सो अब ऐसा भी आपको धर्म से बोलने वाला नहीं है। आप नागरिक और देहाती कार्यों मे लगे क्षत्रियों को आमन्त्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्त को भीतर से प्रसन्न करें। (२) सम्भवत कोई बोलने वाला हो—ग्रामीण नागरिक अधिकारी, सभासदों को आमन्त्रित नहीं किया। (३) ब्राह्मण महाधनियों को आमन्त्रित नहीं किया। (४) धनी वैश्यों को आमन्त्रित नहीं किया। (५) सम्भवत कोई बोलने वाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किन्तु वह दोनों ओर से सुजात नहीं है। तो भी महायज्ञ यजन

कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्म से कोई बोलने वाला नही है। आप दोनों ओर से सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जाने। आप यजन करे, आप मोदन करे, आप अपने चित्त को भीतर से प्रसन्न करे। (६) आप अभिरूप, दर्शनीय। (७) शीलवान्। (८) महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदी वाले, बहुत वित्त उपकरण वान्, बहु धन धान्यवान्। कोश कोष्ठागार परिपूर्ण। (९) बलवती चतुराङ्गनी सेना से युक्त। (१०) श्रद्धालु, दायक। (११) बहुश्रुत। (१२) पण्डित, व्यक्त, मेधावी। (१३) पुरोहित दोनों ओर से सुजात। (१४) पुरोहित अध्यापक मन्त्रधर। (१५) पुरोहित शीलवान्। (१६) पुरोहित पडित, व्यक्त। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुए राजा महाविजित के चित्त को पुरोहित ब्राह्मण ने इन सोलह विधियों से समुत्तेजित किया।

ब्राह्मण! उस यज्ञ मे गाये नही मारी गई, बकरे, भेडे नही मारी गई, मुर्गे सूअर नही मारे गये, न नानाप्रकार के प्राणी मारे गये। न यूप (यज्ञस्तम्भ) के लिए वृक्ष काटे गये। न परहिंसा के लिए कुश (दर्भ) काटे गये। जो भी उसके दास, नौकर, कर्मकर थे, उन्होने भी दण्ड तर्जित, भय तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुए सेवा नही की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होने नही चाहा, उन्होने नही किया। जिसे चाहा उसे किया, जिसे नहीं चाहा, उसे नही किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाड से वह यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हुआ।

तब ब्राह्मण! ग्रामीण और नागरिक कार्यों में नियुक्त क्षत्रिय, अधिकारी सभासद्, धनी ब्राह्मण, धनी वैश्य बहुत सा धन ले, राजा महाविजित के पास जाकर बोले—'देव! यह बहुत सा धन धान्य देव के लिए लाये हैं, इसे देव स्वीकार करे।' 'नही भी! मेरे पास भी यह बहुत सा धर्म से उपार्जित धन धान्य है। यह तुम्हारे ही पास रहे, यहाँ से भी और ले जाओ।' राजा के इन्कार करने पर एक ओर जाकर उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिए उचित नही कि हम इस धन धान्य को फिर

अपने घर को लौटा ले जाये। राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, हन्त! हम भी इसके अनुगामी हो पीछे-पीछे यज्ञ करने वाले होवे।'

तब ब्राह्मण! यज्ञस्थान के पूर्व ओर ग्रामीण नागरिक कार्यों में नियुक्त क्षत्रियों ने अपना दान स्थापित किया। यज्ञस्थान के दक्षिण ओर अधिकारी सभासदों ने। पश्चिम ओर ब्राह्मण धनियो ने। उत्तर आर वैश्य धनियों ने। ब्राह्मण! उन अनुयज्ञों में भी गायें नही मारी गई। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खॉड से ही वह यज्ञ सम्पादित हुए।

'इस प्रकार चार अनुमति पक्ष, आठ अगों से युक्त राजा महाविजित, चार अगों से युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधियाँ हुई। ब्राह्मण! इसे ही त्रिविध यज्ञ सम्पदा और सोलह परिष्कार कहा जाता है।"

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण उन्नाद, उच्चशब्द, महाशब्द करने लगे—'अहो यज्ञ! अहो यज्ञ सम्पदा!!' कुटदन्त ब्राह्मणचुप चाप ही बैठा रहा। तब उन ब्राह्मणों ने कुटदन्त ब्राह्मण से कहा—'आप कुटदन्त किसलिए श्रमण गौतम के सुभाषित को सुभाषित के तौर पर अनुमोदन नही कर रहे हैं?'

"भो! मै श्रमण गौतम के सुभाषित को सुभाषित के तौर पर अनुमोदन नही कर रहा हूँ। सिर भी उसका फट जायेगा, जो श्रमण गौतम के सुभाषित को सुभाषित के तौर पर अनुमोदन नहीं करेगा। मुझे यह विचार हो रहा है कि श्रमण गौतम यह नही कहते—'ऐसा मैंने सुना' या 'ऐसा हो सकता है'। बल्कि श्रमण गौतम ने—'ऐसा तब था, इस प्रकार तब था' कहा है। तब मुझे ऐसा होता है—'अवश्य श्रमण गौतम उस समय या तो यज्ञ स्वमी राजा महाविजित थे या यज्ञ के करानेवाले पुरोहित ब्राह्मण थे। क्या जानते हैं आप गौतम! इस प्रकार के यज्ञ को करके या कराके मनुष्य काया छोड मरने के बाद सुगति-स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होता है?"

"ब्राह्मण ! जानता हूँ, इस प्रकार के यज्ञ को। मै उस समय यज्ञ का याजयिता पुरोहित ब्राह्मण था।"

३ अल्पसामग्री का महान् यज्ञ

"हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ सम्पदा से भी कम सामग्री वाला, कम क्रिया वाला, किन्तु महाफलदायी कोई यज्ञ है ?"

"हे ब्राह्मण ! इससे भी महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! वह इससे भी महाफलदायी यज्ञ कौन है ?"

(१) दान-यज्ञ

"ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुल में शीलवान् प्रव्रजितों के लिए नित्य दान दिये जाते हैं। ब्राह्मण ! वह यज्ञ इससे भी महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्यदान इससे भी महाफलदायी है ?"

"ब्राह्मण ! इस प्रकार के महायज्ञों में अर्हत् या अर्हत् मार्गारूढ नहीं आते। सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! यहाँ दण्ड प्रहार और गल ग्रह (गला पकडना भी देखा जाता है। इसलिए इस प्रकार के यज्ञों म अर्हत् नही आते। जो कि वह नित्य दान है, इस प्रकार के यज्ञ में ब्राह्मण ! अर्हत् आते हैं। सो किस हेतु ? वहाँ ब्राह्मण ! दण्ड प्रहार, गल ग्रह नही देखा जाता। इसलिए इस प्रकार के यज्ञ मे अर्हत् या अर्हत् मार्गारूढ आते हैं। ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्यदान उससे भी महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ सम्पदा से भी अधिक फलदायी, इस नित्य दान से भी अल्प सामग्री वाला, अल्पसारम्भ वाला और महाफलदायी, महामहात्म्य वाला है ?"

"हे ब्राह्मण !"

"हे गौतम ! वह यज्ञ कौन सा है ?"

"ब्राह्मण ! जो कि यह चारों दिशाओं के सघ के लिए (चातुद्दिस सघ उद्दिस्स) विहार का बनवाना है। यह ब्राह्मण ! यज्ञ महामहात्म्य वाला है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस त्रिविध यज्ञ से भी, इस नित्य दान से भी, इस विहार दान से भी अल्प सामग्री वाला, अल्प क्रिया वाला और महाफलदायी महामहात्म्य वाला है ?"

"हे ब्राह्मण !"

"हे गौतम ! कौन सा है ?

(२) त्रिशरण-यज्ञ

"ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध की शरण जाना है, धर्म की शरण जाना है, सघ की शरण जाता है। यह ब्राह्मण ! यज्ञ इस त्रिविध यज्ञ से भी महामहात्म्य वाला है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ इन शरण गमनों से भी अल्प सामग्री वाला, अल्पक्रिया वाला और महाफलदायी, महामहात्म्य वाला है ?"

"हे ब्राह्मण !"

"हे गौतम ! कौन सा है ?"

(३) शिक्षापद यज्ञ

"ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न चित्त हो शिक्षापदों का ग्रहण करना है— (१) अहिंसा (२) अ चोरी (३) अ व्यभिचार (४) झूठ त्याग (५) सुरा मेरय मद्य प्रमाद स्थान (नशा) का त्याग। यह यज्ञ ब्राह्मण ! इस शरण गमनों से भी महामहात्म्यवान् है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ इन शिक्षापदों से भी महामहात्म्यवान् है ?"

"हे ब्राह्मण !"

"हे गौतम ! कौन सा है ?"

(४) शील-यज्ञ

"ब्राह्मण ! जब लोक मे तथागत अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध, विद्याचरण से युक्त, सुगत (अच्छी गति वाले), लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने के लिए अनुपम चाबुक सवार, देव मनुष्यो के शास्ता और बुद्ध उत्पन्न होते हैं, वह देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजाओं के साथ तथा देवताओं और मनुष्यो के साथ, इस लोक को स्वय जाने, साक्षात् किये धर्म को उपदेश करते हैं। वह आदि कल्याण, मध्य कल्याण और अन्त कल्याण धर्म का उपदेश करते हैं। सार्थक, स्पष्ट, सर्वांशपूर्ण और परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को बतलाते हैं। उस धर्म को गृहपति या गृहपति का पुत्र या किसी दूसरे कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है। वह उस धम को सुनकर तथागत के प्रति श्रद्धालु हा जाता है। वह श्रद्धालु होकर ऐसा विचारता है—गृहस्थ का जीवन बाधा और राग से युक्त है और प्रव्रज्या बिल्कुल स्वच्छन्द खुला हुआ स्थान है। घर में रहने वाला पूरे तौर से, एकदम परिशुद्ध और खरादे शख से निर्मल इस ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता। इसलिए क्यों न मै सर और दाढी को मुडकर, काषाय वस्त्र पहन प्रव्रजित हो जाऊं। वह दूसरे समय अल्प या अधिक भोग की सामग्रियों को त्याग, शाति के बन्धन को तोड प्रव्रजित हो जाता है। वह प्रव्रजित हो प्रातिमोक्ष के नियमों का ठीक ठीक पालन करते हुए विहार करता है, आचार गोचर के सहित हो, छोटे से भी पाप से डरने वाला, काय और वचन कर्म से सयुक्त, शुद्ध जीविका करते, शील सम्पन्न, इन्द्रिय सयमी, भोजन की मात्रा जानने वाला, स्मृति मान्, सावधान और सन्तुष्ट रहता है।

वह इस प्रकार उत्तम शीलों, उत्तम इन्द्रियसवर, उत्तम स्मृति सप्रजन्य और उत्तम सतोष से युक्त हो ऐसे एकान्त में वास करता है, जैसे कि जगल मे वृक्ष के नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, जगल का रास्ता, खुले स्थान, पुआल का ढेर। पिण्डपात से लौटने के बाद भोजन

करने के उपरान्त, आसन मार, शरीर को सीधा कर, चारों ओर से स्मृति मान् हो, बाहर की ओर से ध्यान को खीच भीतर की ओर फेरकर विहार करता है। ऐसे ध्यान के अभ्यास से वह अपने चित्त को शुद्ध करता है। हिसा के भाव को छोड़, अहिंसक चित्त वाला होकर विहार करता है। सभी जीवों के प्रात दया का भाव लेकर अपने चित्त को हिसा के भाव से शुद्ध करता है। आलस्य को छोड विना आलस्य वाला होकर विहार करता है। प्रकाशयुक्त सज्ञा (ख्याल) से युक्त सावधान हो अपने चित्त को आलस्य से शुद्ध करता है। अपनी चचलता और शकाओं को छोड शान्त भाव से रहता है। अपने भीतर की शान्ति से सयुक्त चित्त वाला हो, चचलताओं और शकाओं से अपने चित्त को शुद्ध करता है। सन्देहों को छोड सन्देहों से रहित होकर विहार करता है। भले कामों में सन्देहों से चित्त को शुद्ध करता है। इस प्रकार ब्राह्मण ! शील-सम्पन्न होता है।

(५) समाधि-यज्ञ

इन नीवरणों को अपने मे नष्ट देख प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति के उत्पन्न होने से शरीर शान्त होता है। शरीर के शान्त रहने से उसे सुख होता है। सुख के उत्पन्न होने से चित्त एकाग्र होता है। वह कामों (सासारिक भोगों की इच्छा) को छोड, पापो को छोड स वितर्क, स विचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त करके विहार करता है। वह इस शरीर को विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख से सींचता है, भिगाता है, पूर्ण करता है और चारों ओर व्याप्त करता है। उसके शरीर का कोई भी भाग विवेक से उत्पन्न उस प्रीति सुख से अव्याप्त नहीं रहता। ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्व के यज्ञों से अल्प सामग्री वाला और महामहात्म्यवान् है।"

"क्या है हे गौतम ! इस प्रथम ध्यान से भी महामहात्म्यवान् —?"

"हे ब्राह्मण !"

"कौन है हे गौतम !"

"वह भिक्षु वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से भीतरी प्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त किन्तु वितर्क और विचार से रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले दूसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है और फिर वह प्रीति और विराग से भी उपेक्षायुक्त हो स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त हो विहार करता है और शरीर से आर्यों के कहे हुए सभी सुखों का अनुभव करता है, तथा उपेक्षा के साथ, स्मृतिमान् और सुख विहार वाले तीसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। फिर वह सुख को छोड दुःख को छोड पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से न-दुःख और न सुखवाले, तथा स्मृति और उपेक्षा से शुद्ध चौथे ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। —ज्ञान दर्शन के लिए चित्त को लगाता है, चित्त को झुकाता है।—"

(६) प्रज्ञा-यज्ञ

"वह इस प्रकार के एकाग्र, शुद्ध चित्त पाने के बाद मनोमय शरीर के निर्माण करने के लिए अपने चित्त को लगाता है। वह इस शरीर से अलग एक दूसरे भौतिक, मनोमय, सभी अङ्गप्रत्यङ्गों से युक्त, अच्छी पुष्ट इन्द्रियो वाले शरीर का निर्माण करता है। वह इस प्रकार के एकाग्र शुद्ध चित्त पाने के बाद अनेक प्रकार की ऋद्धियों की प्राप्ति के लिए चित्त को लगाता है। वह अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त करता है। । दिव्य श्रोत्र धातु के पाने के लिए अपने चित्त को लगाता है और वह अपने अलौकिक शुद्ध दिव्य, श्रोत्र (कान) से दोनों प्रकार के शब्द सुनता है, देवताओं के भी और मनुष्यों के भी, दूर के भी और निकट के भी। । दूसरे के चित्त की बातों को जानने के लिए अपना चित्त लगाता है। । पूर्व जन्मों की बातों को स्मरण करने के लिए अपना चित्त लगाता है। । प्राणियों के जन्म मरण के विषय में जानने के लिए अपना चित्त लगाता है। ।

आश्रवा के क्षय के विषय मे जानने के लिए अपना चित्त लगाता है। जन्म खत्म हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ के लिये करने को नहीं रहा'—ऐसा जान लेता है। — ।

यह भी ब्राह्मण ! यज्ञ पूण के यज्ञों से अल्प सामग्री वाला और महामहात्म्य वाला है। ब्राह्मण ! इस यज्ञ सम्पदा से उत्तम प्रणीततर दूसरी यज्ञ सम्पदा नही है।"[1]

४ अग्नि यज्ञ

एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के जेतवन-आराम म विहार करते थे। उस समय उग्गतशरीर ब्राह्मण का महायज्ञ होने वाला था पाँच सौ बैल, पाच सौ बछड़े, पाँच सौ बछिया, पाँच सौ बकरे, और पाँच सौ भेड़ें यज्ञ स्थल में यज्ञ करने के लिये लाये गए थे। तब उग्गत शरीर ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ समोदन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उग्गतशरीर ब्राह्मण ने भगवान् को ऐसा कहा—"हे गौतम। मैंने सुना है कि अग्नि जलाना और यूप (यज्ञ स्तम्भ) को खडा करना महाफलदायक है।"

"ब्राह्मण। मैने भी यह सुना है कि अग्नि जलाना और यूप को खडा करना महाफलदायक है।"

दूसरी बार भी, तीसरी बार भी उग्गतशरीर ब्राह्मण ने भगवान् को ऐसा कहा ।

"ब्राह्मण ! मैने भी यह सुना है ।"

"तो हे गौतम ! आप गौतम का और हम लोगों का यह सब सब प्रकार से समान है।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने उग्गतशरीर ब्राह्मण से यह कहा—"ब्राह्मण ! तथागत लोगों से ऐसे नहीं पूछना चाहिए कि 'हे गौतम ! मैने सुना है—? बल्कि ब्राह्मण। तथागत लोगों से इस प्रकार

१ दीघ नि० १, ५।

पूछना चाहिए—'भन्ते ! मै अग्नि जलाना चाहता हूँ, यूप (यज्ञ स्तम्भ) खडा करना चाहता हूँ। भन्ते ! भगवान् मुझे उपदेश करें, भन्ते ! भगवान् मुझे अनुशासन करे, जो कि दीर्घकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो।'

तब उग्गतशरीर ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—'हे गौतम ! मै अग्नि जलाना चाहता हूँ, यूप खडा करना चाहता हूँ। हे गौतम ! आप मुझे उपदेश करे, आप गौतम ! मुझे अनुशासन करे, जो कि दीघकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो।'

(१) तीन शस्त्रों को खडा करना

ब्राह्मण ! अग्नि जलाते हुए, यूप खडा करते हुए, यज्ञ से पूर्व ही तीन अकुशल, दु ख उत्पन्न करने वाले, दु ख के विपाक (फल) वाले शस्त्रों (हथियारों) को खडा करता है। कौन से तीन ? (१) काय-शस्त्र (२) वाक् शस्त्र और (३) मनो-शस्त्र।

ब्राह्मण ! अग्नि को जलाते हुए, यूप को खडा करते हुए, यज्ञ से पूर्व ही ऐसा चित्त उत्पन्न करता है—'इतने बैल, इतने बछड़े, इतनी बाछियाँ, इतने बकरे और इतने भेडें यज्ञ के लिये मारे जाँय।' वह 'पुण्य कर रहा है' सोचकर पाप करता है। 'कुशल कर रहा हूँ' सोचकर अकुशल करता है। 'सुगति (स्वर्ग) का मार्ग ढूँढ रहा हूँ' सोचकर दुर्गति का मार्ग ढूँढता है। ब्राह्मण ! अग्नि जलाते हुए, यूप खडा करते हुए, यज्ञ से पूर्व ही इस पहले मनो शस्त्र (मन रूपी हथियार) को खडा करता है।

और फिर ब्राह्मण ! अग्नि जलाते हुए, यूप खडा करते हुए, यज्ञ से पूर्व ही ऐसी बात कहता है—'इतने बैल, बछड़े, बाछियाँ, बकरे और भेड़े यज्ञ के लिये मारे जाँय।' इस दूसरे वाक् शस्त्र (वचन रूपी हथियार) को खड़ा करता है।

ब्राह्मण ! कौनसा आह्वानीय अग्नि है ? ब्राह्मण ! यहाँ जिसके जो माता या पिता होते हैं। ब्राह्मण ! यह आह्वानीय अग्नि कहा जाता है। सो किस कारण ? ब्राह्मण ! क्योंकि ये आहूत (आह्वानीय) हैं। इसलिए इस आह्वानीय अग्नि का सत्कार, गुरुकार, मान, पूजा कर भली प्रकार से पूजा करनी चाहिए।

ब्राह्मण ! कौन सा गृहपति अग्नि है ? यहाँ ब्राह्मण ! जिसके जो पुत्र, स्त्री, दास, प्रेष्य (नौकर) या कर्मकर होते हैं। ब्राह्मण। यह गृहपति अग्नि कहा जाता है। इसलिए गृहपति अग्नि का सत्कार, गुरुकार, मान, पूजा कर भली प्रकार से सेवा करनी चाहिए।

ब्राह्मण ! कौन सा दक्षिणेय अग्नि है ? यहाँ ब्राह्मण ! जो श्रमण ब्राह्मण मद प्रमाद से विरत, क्षमा, मृदुता म लगे केवल अपना दमन करते हैं, केवल अपने को सम करते हैं, केवल अपने को शान्त करते हैं। ब्राह्मण ! यह दक्षिणेय अग्नि कहा जाता है। इसलिए इस दक्षिणेय अग्नि का सत्कार, गुरुकार, मान पूजा कर भली प्रकार से सेवा करनी चाहिए।

ब्राह्मण ! इन तीन अग्नियों का सत्कार कर सेवा करनी चाहिए।

ब्राह्मण ! यह काष्ठाग्नि (काष्ठ की आग) तो समयानुसार जलाना चाहिए। समयानुसार अपेक्षा करनी चाहिए, समयानुसार बुझा देना चाहिए, समयानुसार फेंक देना चाहिए।

ऐसा कहने पर उग्गत शरीर ब्राह्मण ने यह कहा—"आश्चर्य है हे गौतम ! अद्भुत है हे गौतम ! आप गौतम मुझे उपासक स्वीकार करें, आज से जीवन पर्यन्त मै आपकी शरण जाता हूँ। हे गौतम ! मै इन पाँच सौ बैलो, बछडों, बाछियों, बकरों और भेडों को छोडता हूँ, जीवन देता हूँ। ये हरे हरे तृण खाये, शीतल जल पीवे, तथा शीतल वायु इनके लिए बहे।"[१]

१—अगुत्तर नि० ७, ५, ४।

(५) हिंसा-रहित यज्ञ महाफलदायी

(१)

"हे काश्यप ! मै एक महायज्ञ करना चाहता हूँ । हे काश्यप ! आप निर्देश करे जिससे मेरा भविष्य हित सुख के लिए हो ।"

"राजन्य ! जिस प्रकार के यज्ञ म गौवे काटी जाती हैं, भेड-बकरिया काटी जाती हैं, मुर्गे और सूअर काटे जाते है, तीन प्रकार के जीव मारे जाते है । उनके करने वाले मिथ्या दृष्टि, मिथ्या सकल्प, मिथ्या-वचन, मिथ्या कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या समाधि वाले हे । इस प्रकार के यज्ञ का न तो अच्छा फल होता है, न अच्छा लाभ होता है, न अच्छा गौरव हाता है ।

राजन्य ! जैसे कोई कृषक बीज ओर हल लेकर वन म प्रवेश करे, वह वहाँ बुरे खेत में, ऊसर भूमि म, बालू और काटो वाली जगह मे, सडे हुए, सूखे हुए, सार रहित, न उगने लायक बीज को बोवे । (वृष्टि भी यथासमय अच्छी तरह न हो) तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलता को प्राप्त होंगे ? क्या कृषक अच्छा फल पायेगा ?"

"नही हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह जिस यज्ञ म गौवे काटी जाती हैं, उस यज्ञ का न महाफल होता है । राजन्य ! जिस यज्ञ में गोवे नही काटी जाती हैं, उस यज्ञ का महाफल होता है । राजन्य ! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर वन म प्रवेश करे । वहाँ बालू और काटों से रहित अच्छे खेत म, अच्छे स्थान मे अखड, अच्छे, सूखे नही, सारवाले और शीघ्रता से उगने योग्य बीज को बोये । कालोचित अच्छी तरह पानी भी बरसे । तो क्या वे बीज वृद्धि और विपुलता को प्राप्त होंगे ?"

"हाँ, हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह जिस प्रकार के यज्ञ मे गौवे नही काटी जाती हैं, उस प्रकार के यज्ञ का महाफल होता है ।"[१]

(२)

"यज्ञ एव हवन (जप) मे अश्वमेध, नरमेध, सम्मापास (मेध), वाजपेय (मेध), निरर्गल (सर्वमेध) महायज्ञ को करने से महाफल नही होता है । जहाँ भेड, बकरियाँ गौवें तथा नाना प्रकार के जीव मारे जाते हैं वहाँ उस यज्ञ म महर्षि लोग नही जात हे । और जो यज्ञ हिमा रहित होता है, जहा सर्वदा अनुकूल यजन होता हे, भेड, बकरिया गौवे तथा नाना प्रकार के जीव नही मारे जाते हैं, उस यज्ञ म महर्षि लोग जाते हें । इसलिए विज्ञ पुरुष को ऐसे यजन करने चाहिए, यह यज्ञ महाफलप्रद होता है । ऐसे यजन करने से भला ही होता है, बुरा नही होता । और यज्ञ भी विपुल फल दायक होता है, तथा देवता प्रसन्न होते हैं ।"[२]

— * —

१—दीघ नि० २, १० । २—अगुत्तर नि० ४, ४, ६ ।

पाँचवाँ परिच्छेद

कर्म

१ कर्म का विभाजन

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कि मनुष्य होते ही, मनुष्य म हीनता और उत्तमता दिखाई पडती है ? हे गौतम ! यहाँ मनुष्य अल्पायु देखने मे आते हैं, दीर्घायु, बहुत रोगी, अल्परोगी, दुर्वर्ण, वर्णवान् , असमर्थ, महासमर्थी, अल्पभोग, महाभोग, प्रज्ञावान् देखने मे आते हैं, हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जो कि मनुष्य होते ही मनुष्यों म हीनता और उत्तमता दिखाई पडती है ?"

"माणव ! प्राणी कर्म स्वक् (कर्म ही धन है जिनका) हैं, कर्म दायाद (कर्म ही उत्तराधिकारी है जिनका) कर्म योनि, कम बन्धु, कर्म प्रतिशरण (कर्म ही रक्षक है जिनका) हैं। कर्म प्राणियों को इस (हीन और उत्तमता) म विभक्त करता है।"

"इस आप गौतम के सक्षिप्त से कही, विस्तार से विभाजित न की गई बात का अर्थ मै नहीं समझता। अच्छा हो, आप गौतम इस प्रकार धर्म का उपदेश करें, जिसमे कि आपकी इस सक्षिप्त से कही बात का मैं विस्तार से अर्थ जान जाऊँ।"

तो "माणव ! सुनो, अच्छी तरह मन में करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" कह शुभ माणव ने भगवान् को आज्ञा दिया। भगवान् ने यह कहा—"यहाँ माणव ! कोई स्त्री या पुरुष हिंसक, रुद्र, खून से रँगे हाथ वाला, मारकाट मे रत, सारे प्राणियों के विषय में निर्दयी होता है। इस प्रकार गृहीत, इस प्रकार समादत्त उस कर्म से काया छोड

मरने के बाद अपाय, दुर्गति, विनिपात, नरक मे उत्पन्न होता है। यदि मनुष्यत्व म आता है, तो जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, अल्पायु होता है। माणव! हिंसक हो, निर्दयी हो विहरता है। यह मार्ग अल्पायुता की ओर ले जाने वाला है। और माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष दण्ड रहित, शस्त्ररहित, दयालु, अहिंसक, हिंसा से विरत होता है, सर्वत्र सारे प्राणियों का हितैषी और अनुकम्पक हो विहरता है। वह इस प्रकार गृहीत, इस प्रकार समादत्त उस कर्म से काया छोड मरने के बाद सुगति स्वर्गलोक म उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो जहाँ जहा उत्पन्न होता है, दीर्घायु होता है। माणव! जीवहिंसा से विरत होना, दयालु होना—यह मार्ग दीर्घायुता की ओर ले जानेवाला है।

यहा माणव! कोई स्त्री या पुरुष हाथ, ढेले, डन्डे या हथियार से प्राणियों को मारने वाला होता है। वह उस कर्म स काया छोड मरने के बाद नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो जहा जहा उत्पन्न होता है, बहुत रोगी होता है। मानव! प्राणियों का मारने वाला होना—यह मार्ग बहुत रोगिता की ओर ले जाने वाला है। और माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष प्राणियों को मारने वाला नहीं होता। वह उस कर्म से स्वग लोक मे उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि मे आता है, तो निरोग होता है। यह मार्ग अल्प रोगिता की ओर ले जानेवाला है।

यहाँ माणव! कोई स्त्री या पुरुष क्रोधी, बहुत परेशान रहनेवाला होता है। थोडा भी कहने पर बुरा मान लेता है। कुपित होता है, द्रोह कर लेता है, कोप, द्वेष, नाराजगी प्रगट करता है। वह उस कर्म से नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि मे आता है तो कुरूप होता है। यह मार्ग कुरूपता की ओर ले जानेवाला है। किन्तु माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष न क्रोधी है, न बहुत परेशान रहने वाला है, बहुत कहने पर भी बुरा नहीं मानता, कुपित नही होता, द्रोह नहीं

कर लेता, कोप नही प्रगट करता। वह उस कर्म से स्वर्ग में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि मे आता है, तो सुन्दर होता है। यह मार्ग सुन्दरता की ओर ले जानेवाला है।

यहाँ माणव! कोई स्त्री या पुरुष डाह करने वाला होता है, दूसरे के लाभ, सत्कार, गुरुकार, मानव वन्दन, पूजन में ईर्ष्या (डाह) करता है, द्वेष करता है, ईर्ष्या बाँधता है। वह इस कर्म से नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि में आता है, तो अल्पेशाख्य होता है। यह मार्ग अल्पेशाख्यता की ओर ले जानेवाला है। और माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष डाह करने वाला नहीं होता दूसरे के लाभ में ईर्ष्या नही करता, द्वेष नही करता ईर्ष्या नहीं बाँधता। वह इस कर्म से स्वर्ग मे उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि में आता है, तो महेशाख्य होता है। यह मार्ग महेशाख्यता की ओर ले जानेवाला है।

यहाँ माणव! कोई स्त्री या पुरुष श्रमण या ब्राह्मण को अन्न, पान, वस्त्र, यान (सवारी), माला, गन्ध विलेपन, शय्या, निवास स्थान, प्रदीप का देने वाला नही होता। वह इस कर्म से नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो अल्प भोग (दरिद्र) होता है। यह मार्ग अल्प भोगता (दरिद्रता) की ओर ले जाने वाला है। और माणव! यहा कोई स्त्री या पुरुष—अन्न पान का देनेवाला होता है। वह इस कर्म से स्वर्ग म उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो महाभोग (धनी) होता है। यह मार्ग महा भोगता की ओर ले जानेवाला है।

यहाँ माणव! कोई स्त्री या पुरुष स्तब्ध, अभिमानी होता है, अभिवादनीय को अभिवादन नही करता, उठकर अगवानी करने के योग्य की उठकर अगवानी नही करता। आसन देने योग्य को आसन नही देता, मार्ग देने योग्य को मार्ग नही देता, सत्कर्त्तव्य का सत्कार नही करता, गुरुकर्त्तव्य का गुरुकार नही करता, माननीय का मान नहीं

करता, पूजनीय की पूजा नहीं करता। वह इस कर्म से नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनि म आता है, तो नीच कुल म उत्पन्न होता है। यह मार्ग नीच कुलीनता की ओर ले जानेवाला है। और माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष अ स्तब्ध, अन् अभिमानी हाता है। अभिवादनीय को अभिवादन करता है, उठकर अगवानी करने योग्य की अगवानी करता है, आसन देता है, मार्ग देता है, सत्कार करता है, गुरुकार करता है, मान करता है, पूजा करता है। वह इस कम से स्वर्ग में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि मे आता है, तो उच्च कुल मे उत्पन्न होता है। यह मार्ग उच्च कुलीनता की ओर ले जाने वाला है।

यहाँ माणव! कोइ स्त्री या पुरुष श्रमण या ब्राह्मण के पास जाकर नही पूछने वाला होता है—'भन्ते, क्या कुशल है? क्या अकुशल है? क्या सदोष है? क्या निर्दोष है? क्या सेवनीय है? क्या असेवनीय है? क्या मेरा करना दीर्घकाल तक अहित दु ख के लिए होगा और क्या मेरा करना दीर्घकाल तक हित सुख के लिए होगा? वह इस कम से नरक में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो दुष्प्रज्ञ (मूख) होता है। यह माग दुष्प्रज्ञता (मूर्खता) की ओर ले जानेवाला हे। और माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष श्रमण या ब्राह्मण के पास जाकर पूछने वाला होता है—भन्ते! क्या कुशल है?—वह इस कर्म से स्वर्ग में उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनि म आता है, तो महाप्रज्ञ (बुद्धिमान्) होता है। यह मार्ग महाप्रज्ञता की ओर ले जानेवाला है।"

इस प्रकार माणव! प्राणी कर्म स्वक हैं। कर्म प्राणियों को इस हीन प्रणीतता (उत्तमता) में विभक्त करता है।"[1]

---

१. मज्झिम निकाय १३५।

२. आचरण से सुगति-दुर्गति

(१)

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कोई प्राणी काया छोड मरने के बाद नरक में उत्पन्न होता है और कोई स्वर्ग-लोक में ?"

"गृहपतियो ! अधर्माचरण के कारण कोई प्राणी नरक में उत्पन्न होता है और धर्माचरण के कारण कोई प्राणी स्वर्ग में ।"

"हम लोग आप गौतम के विस्तार से न विभाजित किए, सक्षिप्त भाषण का विस्तारपूर्वक अर्थ नहीं समझ रहे हैं । अच्छा हो, आप गौतम हमे इस प्रकार धर्म उपदेश करे, जिसम आप गौतम के इस विस्तार से न विभाजित किए सक्षिप्त भाषण का विस्तार पूर्वक अर्थ समझ सकें ।"

"तो गृहपतियो ! सुनो, अच्छी तरह मन में करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भो !" कह शालावासी ब्राह्मण गृहस्थो ने भगवान् को उत्तर दिया । भगवान् ने यह कहा—"गृहपतियो ! कायिक अधर्माचरण, विषम आचरण तीन प्रकार का होता है । वाचिक अधर्माचरण, विषम आचरण चार प्रकार का होता है । मानसिक अधर्माचरण, विषम आचरण तीन प्रकार का होता है । गृहपतियो ! कैसे कायिक अधर्माचरण तीन प्रकार का होता है ! यहाँ गृहपतियो ! (१) कोई पुरुष हिंसक, क्रूर, खून से रगे हाथ वाला, मार काट मे रत, प्राणियों के प्रति निर्दयी होता है । (२) चोर होता है, जो दूसरे का बिना दिया, चोरी का कहा जाने वाला गाँव या जगल में रखा धन सामान है, उसको लेने वाला होता है । (३) व्यभिचारी होता है, उन स्त्रियों के साथ सम्भोग करता है जो कि माता द्वारा रक्षित हैं, पिता द्वारा रक्षित हैं, माता पिता द्वारा रक्षित हैं, ज्ञाति वालों द्वारा रक्षित हैं, भगिनी द्वारा रक्षित हैं, गोत्र वालों द्वारा रक्षित हैं, धम से रक्षित हैं, पति वाली दण्ड युक्त हैं, अन्ततोगत्वा

(विवाह सम्बन्धी) माला मात्र भी जिनपर डाल दी गई है। इस प्रकार गृहपतियों, तीन प्रकार का कायिक अधर्माचरण होता है।"

कैसे गृहपतियो! चार प्रकार का वाचिक अधर्माचरण होता है? यहाँ गृहपतियो! कोई पुरुष (१) मिथ्याभाषी होता है, सभा म या परिषद् म या ज्ञात के मध्य म या पचायत के मध्य म या राजदरबार म बुलाने पर साक्षी के लिये 'हे पुरुष! जो जानते हो, वह कहो' पूछने पर वह न जानते हुए कहता है 'मै जानता हूँ'। जानते हुये कहता है 'मै नही जानता'। न देखे कहता है 'मैने देखा है'। देखे हुए कहता है 'मैने नही देखा'। इस प्रकार अपने लिए या पराये के लिए या थोडे भोग वस्तु के लिए जान बूझकर झूठ बोलता है। (२) चुगुलखोर होता है 'इनमें फूट डालने के लिए यहाँ सुनकर वहाँ कहता है, उनमें फूट डालने के लिये वहा सुनकर यहाँ कहता है। इस प्रकार मेल जोल वालों को फोडने वाला, फूटे हुओं (की फूट) को बढाने वाला वर्ग (पार्टीबाजी) म प्रसन्न, वर्ग में रत, वर्ग म आनान्दत, वर्ग करणी वाणी का बोलने वाला होता है। (३) कटुभाषी होता है' जो वाणी तेज, कर्कश, दूसरे को कडवी लगने वाली, दूसरे को पीडित करने वाली,क्रोध पूर्ण, अशान्ति पैदा करनेवाली है, वैसी वाणी का बोलनेवाला होता है। (४) प्रलापी (बकवादी) होता है, बेवक्त बोलनेवाला, अ यथार्थ बोलनेवाला, अ तथ्यवादी, अधर्मवादी, अ विनय (अनीति) वादी, बिना समय, बिना उद्देश्य के, तात्पर्य रहित, अनर्थ युक्त, निस्सारवाणी का बोलनेवाला होता है। इस प्रकार गृहपतियो! चार प्रकार का वाचिक अधर्माचरण होता है।"

"कैसे गृहपातयो! तीन प्रकार का मानसिक अधर्माचरण होता है? यहा गृहपतियो! कोई पुरुष (१) लोभी होता है, जो दूसरे का धन सामान है, उसका लोभ करता है—'अहो! जो दूसरे का धन है, वह मेरा हो जाता'। (२) द्वेष-पूर्ण सकल्प वाला होता है-'यह प्राणी मारे जाये, वध

क्ये जाय, उच्छिन्न होवे, विनष्ट होवें, मत रहे', इत्यादि। (३) मिथ्या ष्टि होता है, 'दान कुछ नही है, यज्ञ कुछ नही है, हवन कुछ नहीं है सुकृत कर्मों का कोई फल विपाक नही हें, यह लोक नहीं है, परलोक नही है, माता नही है, पिता नही है, औपपातिक सत्व (देवता) नही हैं, लोक मे ठीक पहुँचने वाले, ठीक मार्ग पर लगे श्रमण ब्राह्मण नहीं हैं, जो इस लोक और परलोक को स्वय जानकर, साक्षात्कार कर दूसरों को बतलायेंगे'। इस प्रकार गृहपतियो! तीन प्रकार का मानसिक अधर्माचरण होता है।"

गृहपतियो! तीन प्रकार का कायिक धर्माचरण, सम आचरण होता है, चार प्रकार का वाचिक और तीन प्रकार का मानसिक। कैसे गृह-पतियो! तीन प्रकार का कायिक धर्माचरण, सम आचरण होता है? यहाँ गृहपतियो! कोई पुरुष (१) हिंसा छोड हिसा से विरत होता है। वह दण्डत्यागी, शस्त्रत्यागी, लज्जालु, सारे प्राणियों का हितैषी और अनुकम्पक हो विहरता हैं। (२) चोरी को छोड, चोरी से विरत होता है, जो दूसरे का बिना दिया हुआ धन है, उसका न लेनेवाला होता है। (३) व्यभिचार को छोड़, व्यभिचार से विरत होता है। उन स्त्रियों के साथ सम्भोग नही करता, जो कि माता द्वारा रक्षित है इस प्रकार गृहपतियो! तीन प्रकार का कायिक धर्माचरण होता है।

कैसे गृहपतियो? चार प्रकार का वाचिक धर्माचरण होता है? यहाँ गृहपतियो! कोइ पुरुष (१) मिथ्या-भाषण को छोड, मिथ्या भाषण से विरत होता है। सभामें, परिषद् में " "जानबूझ कर झूठ नहीं बोलता है। (२) चुगली छोड़, चुगली से विरत होता है। फूट डालने के लिए वहाँ नही कहता फूटे हुओं को मिलानेवाला होता है। मेल जोल वालों को सहायता देनेवाला होता है। मेल में रत, मेल में प्रसन्न मेल म आनन्दित, मेल करानेवाली वाणी का बोलनेवाला होता है। (३) कटु वचन को छोड, कटु-वचन से विरत होता है। जो वह वाणी मधुर,

कर्ण-सुखद, प्रेम करानेवाली, हृदयङ्गम, सभ्य, बहुजन कान्ता, बहुजन मनापा होती है, उसका बोलने वाला होता है। (४) प्रलाप (बकवाद) को छोड, प्रलाप से विरत होता है। समय देखकर बोलनेवाला ...अर्थ युक्त, रसवती वाणी का बोलने वाला होता है। इस प्रकार गृहपतियो! चार प्रकार का वाचिक धर्माचरण होता है।

"कैसे गृहपतियो! तीन प्रकार का मानसिक धर्माचरण होता है? यहाँ गृहपतियों! कोई पुरुष (१) निर्लोभी होता है, जो दूसरे का धन सामान है उसका लोभ नहीं करता। (२) द्वेष रहित सकल्पवाला होता है—'यह प्राणी बैर रहित, द्रोह रहित, प्रसन्न सुखी हो अपने को धारण करें। (३) सम्यक् दृष्टिवाला होता है—'यज्ञ है, हवन है, ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं, जो बतलायेगे। इस प्रकार गृहपायो! तोन प्रकार का मानसिक धर्माचरण होता है।

गृहपतियो! इस प्रकार धर्माचरण, सम आचरण क कारण कोई प्राणी काया छोड मरने के बाद सुगति, स्वर्ग लोक में उत्पन्न हाते हैं।

गृहपतियो! यदि धर्मचारी, समचारी इच्छा करे—'अहो! मै काया छोड मरने के बाद महाधनी क्षत्रिय हो उत्पन्न होऊँ' यह हो सकता है कि वह मरने के बाद महाधनी क्षत्रिय हो उत्पन्न होवे। सो किस कारण? वह वैसा धर्माचरण करनेवाला है। सम आचरण करनेवाला है। गृहपतियो! यदि धर्माचारी इच्छा करे—'अहो! मै महाधनी ब्राह्मण हो उत्पन्न होऊँ' ...अहो! मै महाधनी वैश्य (गृहपति) हो उत्पन्न होऊँ।"

"गृहपतियो! यदि धर्मचारी इच्छा करे—'अहो! मै चातुर्महाराजिक देवताओं मे उत्पन्न होऊँ'। ...तावतिंस, तुषित, निर्माणरति, परनिर्मित वशवर्ती, ब्रह्मकायिक, आभा परित्ताभ, अप्रमाणाभ, आभास्वर शुभ, परित्तशुभ अप्रमाणशुभ, शुभकृत्स्न, बृहत्फल, अविह, आतप्य, सुदर्शन, सुदर्शी अकनिष्ठ, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्याय तन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के देवताओं में उत्पन्न होऊँ'।

गृहपतियो! यदि धर्मचारी, समचारी इच्छा करे—'अहो! मै आस्रवों (चित्त के मलों) के क्षय से आस्रव रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वय जानकर साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरूँ' यह हो सकता है कि वह आस्रवों के क्षय से प्राप्त कर विहरे। सो किस कारण? वह वैसा धर्मचारी, समचारी है।"[1]

(२)

"जब तक पाप का परिपाक नही होता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान (मधुर) जानता है। किन्तु जब पाप का परिपाक होता है, तब दुखी होता है।"[2]

(३)

"यहाँ सन्तप्त होता है, मरकर सन्तप्त होता है, पाप करने वाला (मनुष्य) दोनों जगह सन्तप्त होता है। मैने पाप किया है' यह (सोच) सन्तप्त होता है, दुर्गति को प्राप्त हो और भी सन्तप्त होता है।"[3]

(४)

"यहाँ प्रमुदित होता है, मरने के बाद प्रमुदित होता है, जिसने पुण्य किया है, वह दोनों ही जगह प्रमुदित होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धता को देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।"[4]

(५)

"सारे पापों का न करना, पुण्यों का सचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह बुद्धों की शिक्षा है।"[5]

(६)

"जो काम करना है, उसे आज ही कर, कौन जानता है कि कल मृत्यु को प्राप्त हो जायँ, मृत्यु महासेना के साथ हमारा कोई समय निश्चित नहीं हुआ है।"[6]

---

१ मज्झिम नि॰ ४१। २ धम्मपद ५, १०।
३ धम्मपद १, १७। ४ धम्मपद १, १६।
५. धम्मपद १४, ५। ६ विनयपिटक।

(७)

पुण्य कर्मो म जल्दी करे, पाप से चित्त को निवारण करे, पुण्य को धीमी गति से करने पर चित्त पाप मे रत होने लगता है।"[1]

— * —

विशेष—

सभी सुख-दुःखो का मूल कर्म नही

"महाराज! सभी वेदनाओं का मूल कर्म ही नही है। वेदनाओं के होने के आठ कारण हैं, जिनसे ससार के सभी जीव सुख दु ख भोगते हैं। वे आठ कौन से हैं? (१) वायु का बिगड जाना। (२) पित्त का प्रकोप होना, (३) कफ का बढ जाना, (४) सन्निपात दोष हो जाना, (५) ऋतुओं का बदलना, (६) खाने पीने मे गडबड होना, (७) बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव, और (८) अपने कर्मों का फल होना—इन आठ कारणो से प्राणी नाना प्रकार के सुख दु ख भोगते हैं।

महाराज! जो ऐसा मानते हैं कि कर्म ही के कारण लोग सुख दु ख भोगते हैं, इसके अलावे कोई दूसरा कारण नहीं है, उनका मानना गलत है।"

"भन्ते, नागसेन! तो भी दूसरे सात कारणो का मूल कर्म ही है, क्योंकि ये सभी कर्म ही के कारण उत्पन्न होते हैं।"

"महाराज! यदि सभी दु ख कर्म ही के कारण उत्पन्न होते हैं तो उनको भिन्न-भिन्न प्रकारों मे नही बाँटा जा सकता। महाराज! वायु बिगड जाने के दस कारण होते हैं—(१) सर्दी, (२) गर्मी, (३) भूख, (४) प्यास, (५) अति भोजन, (६) अधिक खड़ा रहना, (७) अधिक परिश्रम करना, (८) बहुत तेज चलना, (९) बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव और (१०) अपने कर्म का फल। इन दस

---

१ धम्मपद ९, १।

करणों म पहले नव पूर्व जन्म या दूसरे जन्म में काम नही करते, किन्तु इसी जन्म मे करते हैं। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि सभी सुख दु ख कर्म के ही कारण होते हैं।

महाराज! पित्त के कुपित होने के तीन कारण हैं—(१) सर्दी (२) गर्मी (३) असमय मे भोजन करना। कफ बढ जाने के तीन कारण ह—(१) सदा (२) गर्मा (३) खाने पीने मे गोलमाल करना। इन तीनो दोषो मे किसी के बिगडने से खास खास कष्ट होते हैं। ये भि न भि न प्रकार के कष्ट अपने अपने कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। महाराज! इस तरह कर्म के फल से होने वाले कष्ट थोडे ही हैं, अधिक तो और दूसरे कारणों से होने वाले हैं। मूर्ख लोग सभी को कर्म के फल से ही होनेवाले समझ लेते हैं। बुद्ध को छोडकर कोई दूसरा यह बता नही सकता कि किसी का कर्मफल कहाँ तक है।"

मिलिन्द पञ्हो ४, १, ६।

—*—

छठाॅ परिच्छेद

गति

(१) पाॅच गतियाॅ

'सारिपुत्र ! यह पाँच गतियाँ हैं। कोन सी पाँच ? (१) नरक, (२) तिर्यक योनि (पशु पक्षी आदि), (३) प्रेत्य विषय (प्रेत), (४) मनुष्य और (५) देवता।'[1]

(१) नरक

(१)

"जैसे भिक्षुओं ! आमने सामने जुडे दो घर हों, उनके बीच मे खडा आखवाला पुरुष मनुष्यों को घर म प्रवेश करते भी, निकलते भी, टहलते भी, विचरते भी देखे। इसी प्रकार भिक्षुओ ! मै अमानुषिक विशुद्ध दिव्य चक्षु से अच्छे, बुरे, सुवर्ण दुर्वर्ण, सुगतिवाले, दुर्गतिवाले प्राणियों को मरते उत्पन्न होते देखने लगा, कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को पहचानने लगा—'यह आप प्राणधारी (लोग) कायिक दुराचार से युक्त, वाचिक दुराचार से युक्त, मानसिक दुराचार से युक्त, आर्यों के निन्दक, मिथ्या मत रखने वाले (मिथ्या दृष्टि), मिथ्या दृष्टि से प्रेरित कर्म को करनेवाले थे। वह काया छोड मरने के बाद अपाप, दुर्गति, पतन, नरक में प्राप्त हुए हैं। उसे भिक्षुओ ! निरयपाल (नरक पाल) अनेक बाहों से पकडकर यमराज को दिखलाते हैं। तब यमराज प्रथम देवदूत के बारे में पूछता है—"हे पुरुष ! मनुष्यों में क्या तूने प्रथम देवदूत को प्रगट हुआ नहीं देखा ?"

१ मज्झिम नि० १, १, २।

"नहीं देखा भन्ते !"

तब उसे भिक्षुओं यमराज यह कहता है—"हे पुरुष ! क्या मनुष्यों मे तूने उतान ही सो सकने वाले, अपने मल मूत्र में लिपटे सोये, अबोध बच्चे को नही देखा ?"

"देखो भन्ते !" वह ऐसा बोलता है ।

तब भिक्षुओ ! उसे यमराज यह कहता है—हे पुरुष ! जानकर, वृद्ध होते हुए तुझे तब क्या यह नही हुआ—मै भी जन्मने के स्वभाव वाला हूँ, जन्मने से परे नही हूँ । हन्त ! मै काय, वचन, मन से अच्छा काम करूँ ? '

"नही कर सका भन्ते ! मैने भूल की भन्ते !"वह ऐसा बोलता है । तब भिक्षुओ ! उसे यमराज कहता है—'हे पुरुष ! प्रमादी होकर तूने काय, वचन, मन से अच्छा काम नही किया, तो हे पुरुष ! वैसा किया, वैसा प्रमाद किया । सो वह काम न माता ने किया, न पिता ने किया, न भाई ने किया, न भगिनी ने किया । न मित्र अमात्य, न जाति बिरादरी वाले, न श्रमण ब्राह्मण, न देवताओं ने ही किया । तूने ही इस पाप कर्म को किया, तू ही उसके विपाक को भोगेगा ।' तब भिक्षुओ ! यमराज उसे प्रथम देवदूत के बारे मे पूछकर द्वितीय देवदूत के बारे में पूछता है—'हे पुरुष ! मनुष्यों म तूने द्वितीय देवदूत को प्रगट हुआ नही देखा ?'

"नही देखा भन्ते !"

तब उसे भिक्षुओ ! यमराज यह कहता है—हे पुरुष ! क्या तूने मनुष्यों म नही देखा—टेढे हो गए, डण्डा लेकर चलते, कॉपते हुए चलते, आतुर, गत यौवन (बीती हुई जवानी वाले), टूटे दात, सफेद बाल, इधर उधर हिल्ते डुलते सिरवाले, झुरा पडे, काले दाग (तिलक) लगे शरीरवाले, बाती (गोपानसी) के समान झुके हुए वृद्ध स्त्री या पुरुष को ?" वह ऐसा बोलता है—"देखा भन्ते !" तब उसे भिक्षुओ ! यमराज कहता है—"हे पुरुष ! तब जानकर वृद्ध होते हुए

तुझे क्या यह नहीं हुआ—मैं भी जरा धर्मा (बूढ़ा होने वाला) हूँ, जरा से परे नहीं हूँ? हन्त! तू ही उसके विपाक को भोगेगा।"

तब भिक्षुओ! यमराज उसे तृतीय देवदूत के बारे में पूछता है—"हे पुरुष! मनुष्यों में तूने तृतीय देवदूत को प्रगट हुआ नहीं देखा?"

"नहीं देखा भन्ते!"

तब उसे भिक्षुओ! यमराज यह कहता है—"हे पुरुष! क्या तूने मनुष्यों में नहीं देखा—अपने मल मूत्र में लिपटे, सोये, दूसरों द्वारा उठाये जाते, दूसरों द्वारा सेवा किये जाते, बहुत ही बीमार दुखी स्त्री या पुरुष को? हे पुरुष! तब जानकार वृद्ध होते हुए तुझे क्या यह नहीं हुआ—मैं भी रोगी होने के स्वभाव वाला हूँ, रोग से परे नहीं हूँ? हन्त! तू ही उसके विपाक को भोगेगा।"

चतुर्थ देवदूत के बारे में पूछता है—"हे पुरुष! क्या तूने मनुष्यों में नहीं देखा—राजा लोग चोर, आग लगाने वाले को पकड़कर नाना प्रकार के दण्ड देते हैं—चाबुक से भी मरवाते हैं, बेत से भी मरवाते हैं, जुर्माना भी करते हैं, हाथ भी काटते है, पैर भी काटते हैं, हाथ पैर भी काटते है, कान, नाक और कान नाक भी काटते हैं, खोपड़ी हटा सिर पर तपा हुआ लोहे का गोला भी रखते हैं, सिर का चमड़ा आदि हटाकर उसे शंख के समान भी बनाते हैं, कानों तक मुख को फाड़ भी देते हैं, शरीर भर में तेल से भिंगा हुआ कपड़ा लपेट कर बत्ती भी जलाते हैं, हाथ में कपड़ा लपेट कर भी जलाते हैं, गर्दन तक चमड़ा खींच कर घसीटते भी हैं, ऊपर के चमड़े को खींचकर कमर पर छोड़ते और नीचे के चमड़े को घुट्टी पर छोड़ते भी हैं, केहुनी और घुटने में लोहे की छड़ ठोंक कर उनके बल भूमि पर स्थापित कर आग भी लगाते हैं, बंशी के समान के लोहे के अंकुशो को मुख से डालकर निकालते भी हैं, पैसे पैसे भर के मास के टुकड़ों को सारे शरीर से काटते भी हैं, शरीर में घाव कर क्षार भी लगाते हैं, दोनों कानों से कील पार कर उसे

भूमि में गाड, पैर पकड उसी के चारों ओर घुमाते भी हैं, मुगरो से हड्डी को भीतर ही भीतर चूर कर शरीर को मास पुञ्ज सा बना देते भी हैं, तपाये तेल से भी नहलाते हैं, कुत्तो से भी कटवाते हैं, जीते जी शूली पर चढवाते ह, तलवार से सिर कटवाते हैं।...तुझे क्या यह नही हुआ—जो पाप कर्म करते हैं, वह इसी जन्म म इस प्रकार से नाना दण्डों को भोगते हैं? हन्त! तू ही उसके विपाक को भोगेगा।"

पञ्चम देवदूत के बारे म पूछता है—"हे पुरुष! क्या तूने मनुष्यो म नहीं देखा—फूले, नीला पडे या पीब भरे हो गये एक दिन, दा दिन, या तीन दिन के मुर्दे को? तुझे क्या यह नही हुआ—मै भी मरने के स्वभाव वाला हूँ, मृत्यु से परे नही हूँ? हन्त! तू ही उसके विपाक को भोगेगा।"

तब भिक्षुओ! यमराज उस (पुरुष) से पचम देवदूत के बारे मे पूछ कर चुप हो जाता है। तब...उसे ले जाकर निरयपाल 'पच विध बन्धन' नामक दण्ड करते हैं। गर्म लोहे की कील को हाथ मे ठोकते हैं, गर्म लोहे की कील दूसरे हाथ मे ठोंकते हैं। पैर म ठोकते हैं। दूसरे पैर में ठोंकते हैं, छाती के बीच मे ठोकते हैं। वह वहाँ दु खा, तीव्रा, खरी, कटुका वेदना असुभव करता है। भिक्षुओ! उस महा निरय (नरक) के पूर्व दीवार से उठी लौ पश्चिम की दीवार से टकराती है। पश्चिम दीवार से उठी लौ पूर्व की दीवार से टकराती है। उत्तरी दीवार से उठी लो दक्षिण की दीवार से टकराती है। दक्षिण की दीवार से उठी लौ उत्तरी दीवार से टकराती है। नीचे से उठी लौ ऊपर को टकराती है और ऊपर से उठी लौ नीचे को। वह वहाँ दु खा, तीव्रा, खरी, कटुका, वेदना का अनुभव करता है, किन्तु तब तक नही मरता, जब तक कि उसके पापकर्म का अन्त नही हो जाता।

भिक्षुओ! ऐसा समय होता है, जब कदाचित् कभी दीर्घ काल के बाद उस महानिरय (अवीचि नरक) का पूर्व द्वार खुलता है, वह

प्र णी उस ओर शीघ्र वेग से दौडता है। शीघ्रता से दौडते समय उसकी छवि (ऊपरी चमडा) भी दग्ध होती है, चर्म भी, मास भी, स्नायु भी, अस्थि (हड्डी) भी धुआँ देती है। ऐसे ही वह वहाँ रहता है। जब भिक्षुओ ! उसे वहा प्राप्त हुए बहुत काल हो जाता है, तब वह द्वार ब द हो जाता है। वह वहाँ दु खा वेदना अनुभव करता है, किन्तु तब तक नही मरता, जब तक कि उसक पापकर्म का अन्त नही हो जाता।

भिक्षुओ ! ऐसा समय होता है, जब पश्चिम द्वार उत्तर द्वार दक्षिण द्वार खुलता है । भिक्षुओ ! ऐसा समय होता है, जब (अन्त में) कदाचित् उस महानिरय का द्वार खुलता है, वह उस ओर शीघ्र वेग से दौडता है। शीघ्र से दौडते समय उसकी छाव भी दग्ध होती है अस्थि भी धुआँ देती है। ऐसे ही वह (वहाँ) रहता है। (तब) उस द्वार से निकलता है। भिक्षुओ ! उस महाद्वार के बाद, लगे हुए महान् गूथ निरय (=विष्टा का नरक) है। वह वहा गिरता है। भिक्षुओ ! उस गूथ-निरय में सुई जैसे तेज नोक के मुख वाले प्राणी (उसकी) छवि छेदते हैं, छवि को छेदकर चर्म को छेदते हैं, मास, स्नायु, अस्थि मज्जा को छेदते हैं। वह वहाँ दु खा वेदना अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! उस गूथ निरय के पास लगा हुआ 'कुक्कुल निरय' है, वह वहाँ गिरता है। वहाँ दु खा वेदना अनुभव करता है। भिक्षुओ ! उस कुक्कुल निरय के पास लगा हुआ योजन-भर ऊँचा महान 'सिम्बलि वन' है। वहा आदीप्त, ज्वलित, आग हो गए दस अगुल लम्बे काटे हैं, उन पर उसे चढाते उतारते है। वह वहाँ वेदना अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! उस सिम्बलि वन के पास लगा हुआ 'कुक्कुल निरय' है' वह वहाँ प्रविष्ट होता है। हवा से प्रेरित पत्ते गिरकर हाथ को भी काटते

है, पैर को भी, हाथ पैर को भी कान को भी, कान-नाक को भी, काटते हैं, वह वहा वेदना अनुभव करता है।

भिक्षुओ! उस असिपत्र वन के पास लगी हुई खारे जल की नदी है। वह उसमें गिरता है। वहा वह धार की ओर भी बहता है, उलटी-धार भी बहता है। वहा वह दु खा वेदना अनुभव करता है, किन्तु तब तक नही मरता, जब तक कि उसके पास कम का अन्त नही हो जाता।

तब भिक्षुओ! उस निरयपाल निकालकर स्थल पर रख यह कहते ह—'हे पुरुष! तू क्या चाहता है?' वह यह कहता है—'भन्ते! मै भूखा हूँ।' तब उस भिक्षुओ! निरयपाल आदीप्त तप्त लोहे की छुड स मुख को फाडकर, आदीप्त, प्रज्वलित, तप्त लोहकूट को मुख म डालत हैं। वह उसके ओठ को भी जलाता है, कठ को भी, उर को भी, आँत को भी, अँतडी को भी लेते हुए नीचे से निकल जाता है। वह वहाँ वेदना अनुभव करता है।

तब उसे भिक्षुओ! निरयपाल (यमदूत) यह कहते हैं—"हे पुरुष! तू क्या चाहता है?' वह यह कहता है—'भन्ते! मै प्यासा हूँ।" तब उसे भिक्षुओ! निरयपाल आदीप्त तप्त लोहे की छुड से मुख को फाड़कर, आदीप्त तपे ताँबे को डालते हैं। अँतडी को लेते हुए नीचे से निकल जाता है। वह वहाँ - -वेदना अनुभव करता है।

तब उसे भिक्षुओ! निरयपाल उसे फिर महानिरय में डालते हैं।"[1]

(२)

"भिक्षुओ! बाल (मनुष्य) काया और वचन से पाप करके काया छोड मरने के बाद नरक में उत्पन्न होता है। जिसके लिए भिक्षुओ! ठीक से कहने पर कहे—सर्वांशत अनिष्ट, सर्वांशत अकान्त, सर्वांशत अमनाप (अप्रिय) है, तो वह ठीक से कहने पर नरक को ही

१ मज्झिम नि० ३, ३, १०।

कहना चाहिए। नरक में जितना दु ख है, भिक्षुओ! उसकी उपमा देनी भी सुकर नहीं है। भिक्षुओ! जो वह पुरुष तीन सौ शक्ति (बर्छी) मारे जाने पर उसके कारण दु ख, दौर्मनस्य अनुभव करेगा, नरक के दु ख के मुकाबिले में उसकी गिनती भी नहीं हो सकती।

भिक्षुओ! निरयपाल उसको 'पच विध-ब धन' नामक दण्ड देते हैं, बैठाकर कुल्हाडे से काटते हैं । उसे ऊपर पैर और नीचे सिर रखकर बसूले से काटते हैं । उसे रथ मे जोतकर दहकती भूमि म ले जाते हैं, ले आते हैं। दहकते अगार के बडे पर्वत पर चढाते हैं, उतारते हैं। ' ऊपर पैर नीचे सिर पकडकर तप्त लौहकुम्भी म डालते हैं। वह वहाँ गाज फेकता पकता है। वह वहाँ गाज फेकता-पकता हुआ एक बार ऊपर आता है, एक बार नीचे जाता है, एक बार तिरछे जाता है ।

तब भिक्षुओ! निरयपाल उसे पुन महानिरय में डालते हैं, भिक्षुओ! वह महानिरय ऐसा है—

"चार कोनों वाला, चार द्वारों वाला, खण्ड खण्ड म नापकर बँटा हुआ, लोहे के परकार से घिरा हुआ और लोहे से गठित। उसकी लौहमयो भूमि तेज युक्त जलती हुई, और एक सौ योजन विस्तृत आग स व्याप्त हो सदा स्थित रहती है।"

भिक्षुओ! नाना प्रकार से यदि मै नरक की कथा कहता रहूँ तो भी उसके दु ख का पूरा वर्णन करना सुकर नहीं है।"[1]

(२) पशु-योनि

"भिक्षुओ! तिर्यक् (पशु)-योनि म तृण भक्षी प्राणी है, वह हरे तृणों को भी, सूखे तृणों को भी दाँत से काट कर खाते हैं। कौन हैं भिक्षुओ! तृण भक्षी तिर्यक् योनि के प्राणी? हाथी, घोडा, गाय, गदहा, बकरी, मृग और जो कोई और भी तृण-भक्षी तिर्यक् योनि के प्राणी हैं। सो वह बाल

---

१ मज्झिम निकाय ३, ३, ६।

(मूर्ख) भिक्षुओ ! पहले रस भक्षी यहाँ पाप कर्मों को करके काया को छोड मरने के बाद उन तृण भक्षी प्राणियों की योनि में उत्पन्न होता है।

भिक्षुओ ! तिर्यक् योनि में गूथ भक्षी प्राणी हैं। वह दूर से ही गूथ गन्ध को सूँघकर दौडते हैं—'यहाँ खायेंगे', 'यहाँ खायेंगे', जैसे कि ब्राह्मण आहुति गन्ध से दौडते हैं। भिक्षुओ ! कौन है गूथ भक्षी तिर्यक् योनि के प्राणी ? कुक्कुट, सूअर, कुत्ता, स्यार और जो कोई और भी…। सो वह बाल, भिक्षुओ ! पहले रस भक्षी उन गूथ भक्षी प्राणियों की योनि म उत्पन्न होता है।

भिक्षुओ ! तिर्यक्-योनि में प्राणी हैं, जो अन्धकार में जन्मते हैं, अधकार में बूढे होते हैं और अन्धकार ही मे मरते हैं,…कीट, पतग, फोडे से उत्पन्न ।

भिक्षुओ ! तिर्यक् योनि मे प्राणी हैं जो जल में जन्मते, बूढे होते हैं, मरते हैं। मत्स्य, कच्छप, मगर ।

भिक्षुओ ! तिर्यक् योनि म प्राणी हैं जो अशुचि म जन्मते, बूढे होते, मरते हैं। जो वह प्राणी सडी मछली, सडे मृत शरीर या सडे अन्न, गडहा गडही में जन्मते हैं ।

भिक्षुओ ! नाना प्रकार से भी यदि मै तिर्यक योनि की कथा कहता रहूँ, तो भी उसके दु ख का पूरा वर्णन करना सुकर नहीं है। जैसे भिक्षुओ ! कोई पुरुष एक छिग्गल के जोडे को महासमुद्र में फेक दे। उसे पुरवा हवा पच्छिम की ओर बहावे, पछुवा हवा पूर्व की ओर। उत्तरहिया हवा दक्षिण की ओर। दखिनहिया हवा उत्तर की ओर बहाव। वहाँ एक काना कछुवा हो, जो कि सौ वर्ष बाद एक बार उतराता हो। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह काना कछुवा इस एक छिग्गल जोडे में अपनी गर्दन को घुसायेगा ?"

"नहीं भन्ते ! शायद कभी किसी समय दीर्घकाल के बाद।"

"भिक्षुओ ! वह काल शीघ्र ही होगा जब कि वह काना कछुवा उस में अपनी गर्दन को घुसायेगा, लेकिन भिक्षुओ ! एक बार पतित हुए बाल के लिए फिर मनुष्यत्व की प्राप्ति को मै उससे दुर्लभतर कहता हूँ। सो किस हेतु ? भिक्षुओ ! यहाँ (तिर्यक् योनि मे) धर्माचरण, सम-आचरण, पुण्य कर्म, पुण्य क्रिया सम्भव नही है। यहाँ भिक्षुओ ! एक दूसरे के खाने वाले, दुर्बलों को खाने वाले रहते हैं। वह बाल कदाचित् कभी दीर्घकाल के बाद मनुष्यत्व को प्राप्त होता, तो वह जो कि नीचकुल हैं (जैसे) चाण्डालकुल, निषादकुल, बसोरकुल, रथकारकुल, या पुक्कुस कुल, ऐसे दरिद्र, अल्प अन्न पान भोजन, कठिन वृत्ति वाले कुलो म जन्मता है। जहाँ मुश्किल से उसे खाना कपडा मिलता है। और वहाँ भी वह कुरूप, दुर्दर्शन, घुसी गर्दन वाला, बहुरोगी, काना, लूला, कुबडा, पक्षाघात वाला होता है। अन्न-पान वस्त्र यान माला गन्ध विलेपनों का, शय्या निवास स्थान प्रदीपों का लोभी नहीं होता। वह काय, वचन और मन से दुष्कर्म करता है। वह काय, वचन और मन से दुष्कर्म करके, काया छोड मरने के बाद नरक म उत्पन्न होता है। जैसे भिक्षुओ ! जुआरी पहले ही दाव में पुत्र को हार जाये, फिर स्त्री को भी, फिर सारी सम्पत्ति को और फिर बन्धन म चला जाये। भिक्षुओ ! यह दाव स्वल्प मात्र है। जो कि वह जुआरी पहले दाव में पुत्र को हार जाये, फिर स्त्री को भी । उससे कहीं बडा दाव यह है जो कि यह बाल काय, वचन और मन से दुष्कर्म करके नरक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ ! यह केवल परिपूर्ण बाल-भूमि (मूर्खों की भूमि) है।"[1]

२ चार योनियाँ

"सारिपुत्र ! यह चार योनियाँ हैं। कौन सी चार ? (१) अण्डज-योनि, (२) जरायुज योनि, (३) सस्वेदज-योनि, (४) औपपातिक-योनि।

[1] मज्झिम नि० ३, ३, ६।

क्या है सारिपुत्र ! अण्डज योनि ? सारिपुत्र ! जो अण्डे के कोश को फोडकर उत्पन्न होते हैं, यह सारिपुत्र ! अण्डज-योनि कही जाती है। क्या है सारिपुत्र ! जरायुज योनि ? सारिपुत्र ! जो प्राणी बस्ति कोश को फोडकर उत्पन्न होते हैं (जैसे, मनुष्य, गाय, भैंस, आदि) । क्या है सारिपुत्र ! सस्वेदज योनि ? सारिपुत्र ! जो प्राणी सडी मछली, में उत्पन्न होते है, सडे मुर्दे मे उत्पन्न होते हैं, सडी दाल में उत्पन्न होते हैं, गडहा या गडही मे उत्पन्न होते हैं । क्या है सारिपुत्र ! औपपातिक-योनि ? सारिपुत्र ! देवता, नरक के जीव, कोई कोई मनुष्य और कोइ कोई विनिपातिक (नीचे गिरने वाले नारकीय) । ।"[१]

— * —

१ मज्झिम नि० १ १ ७ ।

सातवाँ परिच्छेद

छ दिशाओं की पूजा

"गृहपति पुत्र ! यह छ दिशाये जाननी चाहिए। (१) माता पिता को पूर्व दिशा जानना चाहिए। (२) आचार्यों को दक्षिण दिशा जानना चाहिए। (३) पुत्र स्त्री को पश्चिम दिशा जानना चाहिए। (४) मित्र अमात्यो को उत्तर दिशा जानना चाहिए। (५) दास कर्मकरों को नीचे की दिशा जानना चाहिए। (६) श्रमण ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा जानना चाहिए। गृहस्थ को चाहिए कि वह इन दिशाओं को नमस्कार करे।"[1]

१ माता पिता की सेवा

(१)

"गृहपति पुत्र ! पाँच तरह से माता पिता की सेवा करनी चाहिए। (१) (इन्होंने मेरा) भरण पोषण किया है। अत मुझे इनका भरण पोषण करना चाहिए। (२) (मेरा काम किया है) अत मुझे इनका काम करना चाहिए। (३) (इन्होंने कुल वश बनाये रखा, अत) मुझे कुल वश बनाये रखना चाहिए। (४) (इन्होंने मुझे उत्तराधिकार दिया, अत) मुझे उत्तराधकार का प्रतिपादन करना चाहिए। (५) मृत प्रेतों के निमित्त श्राद्ध देना चाहिए। इस प्रकार पाँच तरह से सेवित (माता पिता) पुत्रपर पाच प्रकार से अनुकम्पा करते हैं—(१) पाप से बचाते हैं। (२) पुण्य म लगाते हैं। (३) शिल्प सिखाते हैं। (४) योग्य स्त्री से सम्बन्ध कराते हैं। (५) समय पाकर उत्तराधिकार सौंप देते हैं। गृहपति पुत्र ! इन पाँच बातों से पुत्र द्वारा माता पिता रूपी

---

१ दीघ नि० ३, ८,

पूर्व दिशा की सेवा होती है। इस प्रकार पूर्व दिशा ढॅकी हुई, क्षेम युक्त, भयरहित होती है।"[1]

(२)

"ससार में माता की सेवा करना सुखकर है और सुखकर है करना पिता की सेवा। श्रमण भाव (प्रव्रजित होना) ससार में सुखकर है और है सुखकर निर्वाण को प्राप्त कर लेना।"[2]

(३)

"जो माता पिता तथा जीर्ण, वृद्ध लोगों का सामर्थ्य होते हुए भी भरण पोषण नहीं करता ह, वह उसके विनाश का कारण है।"[3]

(४)

"जो मनुष्य माता पिता का भरण पोषण करने वाला, कुल के जेठे लोगों की सेवा करने वाला, प्रेमनीय तथा मधुर वचन बोलने वाला, चुगलखोरी से विरत, मात्सर्य और क्रोध से रहित, सत्यवादी है, उसे ही तावतिस लोक के देवता "सत्पुरुष" कहते हैं।"[4]

(५)

"माता पिता की सेवा, पुत्र स्त्री का प्रतिपालन तथा शान्तिपूण काम करना—ये उत्तम मङ्गल है।"[5]

माता का पालन पोषण करने वाला उपासक ब्राह्मण, जहा भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ समोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा हुआ माता का पाल्न पोषण करने वाले उपासक ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—"हे गौतम! मै धर्मपूर्वक भिक्षा ढूँढता हूँ और धमपूर्वक भिक्षा ढूँढकर माता पिता का भरण पोषण करता हूँ। क्या हे गौतम! ऐसा करनेवाला मे अच्छा कर रहा हूँ।"

---

१ दीघ नि० ३, ८।
२ धम्मपद २३, १३।
३ सुत्त नि० १, ६, ८।
४ सयुत्त नि० १, ११, २, २।
५ सुत्त नि० २, ४।

'तो ब्राह्मण ! तू ऐसा करने वाला अच्छा कर रहा है। ब्राह्मण ! जो धर्मपूर्वक भिक्षा ढूँढता है और धर्मपूर्वक भिक्षा ढूँढकर माता पिता का भरण पोषण करता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।"

"जो व्यक्ति माता या पिता का धर्मपूर्वक भरण पोषण करता है, वह पण्डित पुरुष माता पिता की उस सेवा से यहाँ भी प्रशंसित होता है और मरने के बाद स्वर्ग में प्रमोद करता है।"[1]

(७)

"भिक्षुओ ! पाँच बातों को देखते हुए माता पिता पुत्र की इच्छा करते हैं। कौन सी पाँच ? (१) हमारा भरण पोषण करेगा, (२) काम करेगा, (३) वंश बहुत दिनों के लिए स्थित होगा, (४) उत्तराधिकार पाने वाला होगा, (५) मरने पर श्राद्ध दान देगा। भिक्षुओ ! इन पाँच बातों को देखते हुए माता पिता पुत्र की इच्छा करते हैं।"[2]

(८)

"भिक्षुओ ! जिस कुल में पुत्रों द्वारा माता पिता की सेवा होती है वह कुल स ब्रह्म है। पूर्व-देवताओं के साथ है। पूर्व आचार्यों के साथ है। आह्वान करने योग्य व्यक्तियों के साथ है। भिक्षुओ ! ब्रह्मा, पूर्व देवता, पूर्व आचार्य और आह्वानीय शब्द माता-पिता के लिए है। सो किस कारण ? वे नाना प्रकार से संसार को दिखलाने वाले है।"

"माता पिता ही ब्रह्मा, पूर्व आचार्य, आह्वानीय और पुत्रों के अनुकम्पक कहे जाते हैं इसलिये बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि उनका नमस्कार एवं सत्कार करे। अन्न, पेय, वस्त्र, शयन, उबटन, स्नान और पैरों को धोने से उनकी सेवा करे। बुद्धिमान् पुरुष माता पिता की उस सेवा से यहाँ भी प्रशंसित होता है और मरने पर स्वर्ग में भी प्रमोद करता है।"[3]

१—संयुत्त नि० १, ७, २, ९। २—अंगुत्तर नि० ५, ४, ९।
३—इतिवुत्तक १०६।

(९)

"भिक्षुओ ! मुझसे दो (जनों) के किए हुए कर्म का बदला नही दिया जा सकता—माता और पिता के। भिक्षुओ ! एक कधे से माता को ढोने, और एक कधे से पिता को। जो कि सौ वर्ष तक जीने वाले हों और वह सौ वर्ष तक उनको उबटन, शरीर दबाना और स्नान से सेवा करे, वे भी कही पेशाब-पाखाना करें, भिक्षुओ ! फिर भी उसका वह कम माता पिता के किय हुए कम की एक कला के बराबर भा नही होता। भिक्षुओ ! इस महापृथ्वीपर सात रत्नो से युक्त कर माता पिता को राजा बना दे। भिक्षुओ ! फिर भी उनके किए हुए कर्म की एक कला के बराबर भी नही होता। सो किस कारण ? भिक्षुओ ! पुत्रों के लिए माता पिता बहुतही उपकारक हैं, जोकि दूध पिलाये, पोसे हैं, इस लोक को दिखलाये हैं। भिक्षुओ ! जो श्रद्धावान् माता पिता कोश्रद्धावान् बनाता है, दुराचारी को सदाचारी बनाता है, कजूस को दानी बनाता है, दुष्प्रज्ञ को प्रज्ञावान् बनाता है। भिक्षुओ ! इससे माता-पिता के किए हुए कर्म का बदला दिया जा सकता है।"[1]

(१०)

"हे सारिपुत्र ! कहा से हम जैसों को अप्रमाद होगा, जिन्हे कि माता पिता का पोषण करना हो, पुत्र स्त्री का पोषण करना हो, दास कर्मकरों का पोषण करना हो, मित्र आत्माओं का काम करना हो, जाति भाइयों का काम करना हो, अतिथियों का, पूर्व प्रतों का देवताओं का, राजा का, राज कार्य करना हो, और इस अपने शरीर का भी तर्पित वर्द्धित करना हो ?

"तो क्या मानते हो धानजानि ! यहा कोई पुरुष माता पिता के लिए धर्मचारी, विषमचारी होवे, उस अधर्मचर्या, विषमचर्या के लिय उसे नरकपाल (यमदूत) नरक में ले जायें, क्या वह यह कहने पा

१—अगुत्तर नि० २, ३, ७।

सकता है—'मै माता पिता के लिए अधर्मचारी, विषमचारी हुआ। नरकपालो! मत मुझे नरक में डालो? या उसके माता पिता यह कहने पा सकते हैं—'यह हमारे लिए अधर्मचारी, विषमचारी हुआ, नरकपालो! मत इसे नरक म डालो?"

"नही हे सारिपुत्र! बल्कि उस चिल्लाते ही को नरकपाल नरक में डाल देंगे।"

'तो क्या मानते हो, धानजानि! यहा कोई पुत्र दारा के लिए अधर्मचारी, विषमचारी होके दास कर्मकरों के लिये, मित्र अमात्यो के लिए, भाई बन्धुओं के लिये, अतिथियों के लिए, पूर्व प्रतों के लिए, देवताओं के लिए, राजा के लिये, काया के तर्पण वद्धन के लिये, अधर्मचारी, विषमचारी होवे, तो क्या वह यह कहने पा सकता है—'मै शरीर के तर्पण वर्द्धन के लिये अधर्मचारी, विषमचारी हुआ, नरकपालो! मत मुझे नरक मे डालो? या दूसरे यह कहने पा सकते हैं—यह काया के तर्पण वर्द्धन के लिए अधर्मचारी, विषमचारी हुआ, नरकपालो! मत इसे नरक मे डालो?"

"नहीं हे सारिपुत्र! बल्कि उस चिल्लाते ही को नरकपाल नरक मे डाल देंगे।"

"तो क्या मानते हो धानजानि! जो कि माता पिता के हेतु अधर्म चारी, विषमचारी होता है और जो कि माता-पिता के हेतु धर्मचारी, समचारी होता है, इन दोनों कर्मों म कौन श्रेय (उत्तम) है?"

"हे सारिपुत्र! माता पिता के हेतु अधमचारी, विषमचारी होना है, यह श्रेय नहीं, किन्तु जो कि माता पिता के हेतु धर्मचारी, समचारी होना है, यही श्रेय है। अर्मधचर्या, विषमचर्या से हे सारिपुत्र! धर्मचर्या, समचर्या श्रेय है।"

"धानजानि! दूसरे भी स-हेतुक धार्मिक कर्मान्त हैं, जिनसे माता पिता का पोषण किया जा सकता है, किन्तु पापकर्म को न करना और पुण्य मार्ग को ग्रहण करना चाहिए।"

"तो क्या मानते हो धानजानि ! जो कि पुत्र दारा के हेतु अधर्मचारी, विषमचारी होना, दास कर्मकरों के हेतु, मित्र अमात्यों के हेतु, जाति बन्धुओ के हेतु, अतिथियों के हेतु, पूर्व-प्रेतों के हेतु, देवताओं के हेतु, राजा के हेतु, काया के तपण वर्द्धन के हेतु पुण्य मार्ग को ग्रहण करना चाहिए।'[१]

(११)

"उस समय मानस्त ध ब्राह्मण श्रावस्ती मे रहता था। वह न तो माता का अभिवादन करता था, न पिता का, न आचार्य का अभिवादन करता था और न ज्येष्ठ भाइयो का ही। उस समय भगवान् बहुत बडी परिषद् म बैठे धर्मोपदेश कर रहे थे। तब मानस्तब्ध ब्राह्मण के मन में ऐसा हुआ—"यह श्रमण गौतम बहुत बडी परिषद् मे बैठा धर्मोपदेश कर रहा है, क्यों न मै जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ चलूँ, यदि श्रमण गौतम मुझसे बोलेगा, तो मै भी बोलूँगा और यदि नही बोलेगा, तो मै भी नही बोलूँगा।"

तब मानस्तब्ध ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। वहाँ जा चुपचाप एक ओर खडा हो गया। भगवान् भी उससे न बोले। तब मानस्तब्ध ब्राह्मण—'श्रमण गौतम कुछ नही जानता है।' (सोच), वहाँ से फिर लौटना चाहा। तब भगवान् ने मानस्तब्ध ब्राह्मण के चित्त के वितर्क को जान, मानस्तब्ध ब्राह्मण से गाथा में कहा—

"ब्राह्मण ! किसी के लिए भी मान (अभिमान) अच्छा नही होता, जिस मतलब से तुम यहाँ आए हो, उसे कहो।"

तब मानस्तब्ध ब्राह्मण ने—'श्रमण गौतम चित्त को भी जानता है।' सोच, वहीं भगवान् के पैरों पर सिर से पडकर, पैरों को चूमने लगा, हाथों से दबाने लगा, और अपना नाम सुनाने लगा—'हे गौतम ! मै मानस्तब्ध हूँ।'

---

१ माज्झम नि० ९७।

तब वह परिषद् आश्चर्य चकित हो गई—'आश्चर्य है ! अद्भुत है !! यह मानस्तब्ध ब्राह्मण न तो माता का अभिवादन करता है, न पिता का, न आचार्य का अभिवादन करता है, और न ज्येष्ठ भाइयों का ही। और यहाँ वही श्रमण गौतम का इस प्रकार सत्कार कर रहा है !' तब भगवान् ने मानस्तब्ध ब्राह्मण को ऐसा कहा—'बस ब्राह्मण ! उठो, अपने आसन पर बैठो। इतना ही पर्याप्त है जो कि मेरे ऊपर तेरा चित्त प्रसन्न (श्रद्धावान्) हुआ।' तब मानस्तब्ध ब्राह्मण अपने आसन पर बैठकर भगवान् से गाथा मे कहा—

"किससे अभिमान नही करना चाहिए ? किसका गौरव करना चाहिए ? किसकी सेवा करनी चाहिए और किसकी भली प्रकार पूजा ?"

"माता, पिता, ज्येष्ठ भाई तथा चौथे आचार्य से अभिमान नहीं करना चाहिए। उनका गौरव करना चाहिए। उनकी सेवा और भली प्रकार पूजा करनी चाहिए।"[१]

२ आचार्य की सेवा

"गृहपतिपुत्र ! पाँच बातों से शिष्य को आचार्य रूपी दक्षिण दिशा की सेवा करनी चाहिए—(१) उत्थान (तत्परता) से, (२) उपस्थान (हाजिरी सेवा) से, (३) सुश्रूषा से, (४) परिचर्या=सत्संग से (५) सत्कार पूर्वक विद्या सीखने से। गृहपतिपुत्र ! इस प्रकार पाँच बातों से शिष्य द्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकम्पा करते हैं—(१) सु-विनय से युक्त करते हैं, (२) सुन्दर शिक्षा को भली प्रकार सिखाते हैं, (३) 'हमारी विद्यायें परिपूर्ण रहेंगी' सोच, सभी शिल्प सभी श्रुत (विद्या) को सिखाते हैं, (४) मित्र आत्माओं को सुप्रतिपादन करते हैं, (५) दिशा की सुरक्षा करते हैं।"[२]

१ सयुत्त नि० १, ७, २, ५। २ दीघनि० ३, ८।

३ पत्नी की सेवा

(१) पाँच प्रकार की सेवा

"गृहपतिपुत्र ! पाँच प्रकार से स्वामी को भार्या (स्त्री) रूपी पश्चिम-दिशा की सेवा करनी चाहिए-(१) सम्मान से, (२) अपमान न करने से, (३) व्यभिचार न करने स, (४) ऐश्वर्य-प्रदान से, (५) अलकार प्रदान से गृहपति पुत्र ! इन पाँच प्रकारो से स्वामी द्वारा भार्यारूपी पश्चिम दिशा की सेवा होने पर, (वह) स्वामी पर पाच प्रकार से अनुकम्पा करती है—(१) भार्या द्वारा कामकाज भली प्रकार होते हैं, (२) नौकर चाकर वश मे रहते हैं, (३) अर्जित की रक्षा करती है, (४) स्वय व्यभिचारिणी नही होती, (५) सब कामो मे निरालस और दक्ष होती है ।"[1]

(२) सात प्रकार की पत्नियाँ

"गृहपति ! क्यो घर मे केवटों के मछली मारने के समान मनुष्यों का उच्च और महाशब्द हो रहा है ?"

"भन्ते ! सुजरता नाम की बहू, जो अभी अर्द्ध कुशल है, लाई गई है, वह न श्वसुर का आदर करती है, न सासु का आदर करती है, न अपने पति का आदर करती है और न भगवान् का ही सत्कार, गुरुकार, मान तथा पूजा करती है ।"

तब भगवान् ने सुजाता को सम्बोधित किया—"सुजाते ! यहाँ आओ ।"

"हाँ, भन्ते !" कह, भगवान् की बात को सुनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गई । जा, अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी हुई सुजाता से भगवान् ने यह कहा—"सुजाते ! पुरुषों के लिए सात तरह की भार्या (पत्नियाँ) होती हैं । कौन सी सात ? (१) कसाई के समान, (२) चोरिनी के समान, (३) आर्या के समान, (४) माता के समान,

१—दीघनिकाय ३, ८ ।

(५) बहिन के समान, (६) सखी के समान, (७) दासी के समान। सुजाते! ये पुरुषों के लिए सात तरह की भार्या हैं, उनम से तुम कौन हो?"

"भन्ते! मै भगवान् के इस सक्षिप्त से कहे का विस्तार से अर्थ नहीं जानती हूँ। अच्छा हो भन्ते! भगवान् वैसे धर्म का उपदेश करें, जिससे कि भगवान् के इस सक्षिप्त से कहे का अर्थ मै विस्तार से जान जाऊँ।"

'तो सुजाते! सुनो, अच्छी तरह मन मे करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते!" कह, सुजाता ने भगवान् को प्रत्युत्तर दिया। भगवान् ने ऐसा कहा—"जो भार्या प्रदुष्ट चित्त, अहित करने वाली, पर पुरुष मे आसक्त, पति का अनादर करने वाली, धन से खरीदे के समान वध के लिए उत्सुक हो, उस ऐसी भार्या को 'वधिका' (कसायिनी) कहते हैं। (२) जो स्त्री पति के शिल्प, व्यापार तथा खेती से प्राप्त किए धन का अल्पमात्र भी नाश करना चाहती है, उस ऐसी स्त्री को 'चोरिनी' कहते हैं। (३) जो अकरणीय कर्म को करने वाली, आलसी, बहुत खाने वाली, कटु भाषी, चण्डी बुरा जवाब देने वाली, उद्योग करने वाले को दबाने वाली हो, उस ऐसी स्त्री को 'आर्या' कहते हैं। (४) जो सर्वदा हित चाहने वाली होती है, माता जैसे पुत्र की रक्षा करती है, वैसे पति की रक्षा करने वाली तथा पति के लाये हुए धन को सम्हालती है, उस ऐसी स्त्री को 'माता' कहते हैं। (५) जैसे बड़ी बहिन छोटे भाई से प्रेम करती है, वैसे अपने पति का गौरव करने वाली, लज्जाशील तथा पति के अनुसरण करने वाली हो, उस ऐसी स्त्री को 'बहिन' कहते ह। (६) बहुत दिनो पर आयी हुई एक सखी को दूसरी देखकर जिस प्रकार आनन्दित होती है, उसी प्रकार यहाँ भी जो स्त्री पति को देखकर प्रमुदित होती है और जो कुल की रक्षा करने वाली, शीलवती तथा पतिव्रता, उस ऐसी स्त्री को 'सखी' कहते हैं। (७) मारने, सजा देने, और डाँटने पर भी जो क्रोध नही करती, प्रसन्न चित्त से पति को

चाहती है और अक्रोध (मैत्री) के साथ पति के अनुसार चलती है, उस ऐसी स्त्री को 'दासी' कहते हैं।"

"यहाँ जिसे वधिका, चोरिनी, भार्या स्त्री कहते हैं, वे अपने दुश्चरित्र, कटुता और अनादर से काया छोड मरने के बाद नरक में जाती हैं और जो यहाँ माता, बहिन, सखी तथा दासी कही जाती है, वे शील में स्थित, बहुत दिनों तक सयमी रह कर काया छोड मरने के बाद स्वग में जाती हैं।"

"सुजाते! ये पुरुषों के लिए सात तरह की भार्या हैं, उनमे से तुम कौन हो?"

"मुझे भन्ते! आज से भगवान् 'दासी' के समान पति के लिए भार्या समझें।"[1]

(३) चार प्रकार के सहवास

"गृहपतियो! चार प्रकार के सहवास (सवास=एक साथ रहना) होते हैं। कौन स चार? (१) शव, शव के साथ सहवास करता है। (२) शव देवी के साथ सहवास करता है, (३) देव शव के साथ सहवास करता है। (४) देव देवी के साथ सहवास करता है। कैसे गृहपतियो! शव शव के साथ सहवास करता है? यहाँ गृहपतियो! स्वामी (पति) हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठ बोलने वाला, नशाबाज, दु शील, पापधर्मा, कजूसी की गन्दगी से लिप्त चित्त, श्रमण ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाला हो गृह मे वास करता है और इसकी भार्या भी हिंसक होती है । उस समय गृहपतियो! शव शव के साथ सहवास करता है। (२) कैसे गृहपतियो! शव देवी के साथ सहवास करता है? गृहपतियो! स्वामी हिंसक होता है और उसकी भार्या अहिंसा-रत, चोरी से विरत, सदाचारिणी, सच्ची, नशा विरत, सुशीला, कल्याण धर्म युक्त, मल मात्सय रहित, श्रमण ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाली हो गृह में वास करती

१—अगुत्तर नि० ७, ६, १०।

है। उस समय गृहपतियो ! शव देवी के साथ सहवास करता है। (३) कैसे गृहपतियो ! देव शव के साथ सहवास करता है? गृहपतियो ! स्वामी अहिंसा रत होता है और उसकी भार्या हिंसक होती है। उस समय गृहपतियो ! देव शव के साथ सहवास करता है। (४) कैसे गृहपतियो ! देव देवी के साथ सहवास करता है? गृहपतियो ! स्वामी अहिंसा रत होता है और उसकी भार्या भी अहिंसक होती है। उस समय देव देवी के साथ सहवास करता है। गृहपतियो ! यह चार सहवास हैं।"[1]

(४) स्त्री भी पुरुष से श्रेष्ठ

"हे जनाधिप ! कोई स्त्री भी पुरुष से श्रेष्ठ होती है। जो कि मेधाविनी, शीलवती, श्वशुर देवा (श्वशुर को देव के समान मानने वाली) पतिव्रता होती है। उसमें जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह शूर, दिशाओं का पति होता है। वैसी भाग्यवती का पुत्र राज्य पर शासन करता है।"[2]

(५) स्त्री-पोषक गृहस्थों का महत्व

"हे मातलि ! जो गृहस्थ पुण्य करने वाले, शीलवान तथा धर्म के साथ स्त्री का पालन पोषण करते हैं, उन जैसे उपासकों को मैं प्रणाम करता हूँ।"[3]

(६) पुत्रियों को शिक्षा

"भन्ते ! यह कुमारियां अपने पति के घर जायेंगी। इन्हें उपदेश दें, अनुशासन करें, जो इनके लिए चिरकाल तक सुखकर और कल्याणकर हो।"

तब भगवान् ने उन कुमारियों से यह कहा—

"तो कुमारियो ! तुम्हें यह सीखना चाहिए कि तुम्हारा हित चाहने-वाले माता पिता तुम्हारे हित का ख्याल करके तुम्हें जिस पति को सौंपे,

१ अंगुत्तर नि० ४, १, ३। २ संयुत्त नि० ३, २, ६।
३ संयुत्त नि० १, ११, २, ८।

तुम उससे पीछे सोनेवाली और पहले उठने वाली होगी, उसकी आज्ञा कारिणी होगी, उसके अनुकूल चलोगी, उससे प्रिय वचन बोलोगी।"

"तो कुमारियो! तुम्हे सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के जो आदर भाजन हों, उसके माता पिता हों, श्रमण ब्राह्मण हों, उनको तुम मानोगी, सत्कार करोगी, पूजोगी और अतिथियों को आसन तथा जल से आदर करोगी।"

"तो कुमारियो! तुम्हे यह सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के जो घर के काम काज हे—चाहे ऊन के हों, चाहे कपास के हों, उनम (सूत कातने, चर्खा चलाने आदि में) दत्त चित्त होगी, आलस्य रहित होगी, उनम अपनी बुद्धि खर्च करने वाली होगी, उनके करने म समय हागी।"

"ता कुमारियो! तुम्हे यह सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के घर म जो काम करने वाले हों, चाहे दास हों, चाहे नौकर चाकर हो, उनके कृत अकृत को जानोगी, उनके सामर्थ्य को जानोगी, रोगी होने पर उनको उचित पथ्य दोगी।"

"तो कुमारियो! तुम्हे यह सीखना चाहिए कि जो कुछ तुम्हारे पति कमाकर लाये—धन धान्य, सोना अथवा चाँदी, कुछ भी हो, उसे सम्हाल कर रखने वाली होगी, उसे नष्ट न करने वाली होगी और न होगी धूर्तिनी, चोरिनी तथा मस्त रहने वाली।

कुमारियो! इन पाँचों बातों से युक्त स्त्री जाति काया को छोड मरने के बाद मनाप कायिक देवताओं के साथ उत्पन्न होती है।"

"जो स्त्री नित्य उत्सुकता के साथ काम में लगी रहती है, पुरुष के सब कामों को करती हुई, उसका अनादर नही करती, ईर्ष्या से कभी पति पर क्रोध नहीं करती, अपितु जो पण्डिता सब तरह से पति का गौरव करती है, पूजती है, जो उद्योगिनी है, आलस्य न करनेवाली है, खान-दान के लोगों को एकत्र रखती है, पति के मन के अनुसार चलती है

तथा उसके कमाये हुए धन की रक्षा करती है, जो स्त्री पति के वश म रहती हुई, इस प्रकार के व्रत का पालन करती है। वह जो मनाप नाम का देवलोक है, वहाँ पैदा होती है।"[1]

विशेष—

बहू धर्म

"पुत्री! श्वसुर कुल म वास करते (१) भीतर की आग बाहर न ले जानी चाहिए, (२) बाहर की आग भीतर न ले जानी चाहिए, (३) देत हुए को देना चाहिए, (४) न देते हुए को न देना चाहिए, (५) देत हुए न देते हुए को भी देना चाहिए, (६) सुख से बैठना चाहिए, (७) सुख से खाना चाहिए, (८) सुख से लेटना चाहिए, (९) अग्नि परिचरण करना चाहिए, (१०) भीतर के देवताओं को नमस्कार करना चाहिए।"

"तातो। मेरे पिता ने (जो कहा वह) इस साधारण आग का लेकर नही कहा, प्रत्युत घर के भीतर सासु आाद स्त्रियों का गुप्त बात पैदा होती है, वह दास दासियों को न कहनी चाहिए। एसी बात बढकर कलह कराती है। इसका ख्याल कर तातो! मेरे पिता ने कहा।

तातो! देते हैं उन्हीं को देना चाहिए—यह जो कहा, वह मँगना की चीज का ख्याल करके कहा। "जो नही देते हैं—यह भी मँगनो को लेकर ही कहा—जो नहीं लौटाते हैं, उन्हें नहीं देना चाहिए'— ख्याल कर कहा। 'देने वाले को भी, न देने वाले को भी देना चाहिए'— यह निर्धन धनी ज्ञानी मित्रों को चाहे वह दे सके या नही, देना ही चाहिए—इसका ख्याल करके कहा। 'सुख से बैठना चाहिए'—यह भी सासु ससुर को देखकर उठने के स्थान पर बैठना नही चाहिए— ख्याल करके कहा। सुख से खाना चाहिए'—यह भी सासु ससुर स्वामी के भोजन करने से पहले ही भोजन न कर उनको परोस, सबको मिलने,

१ अंगुत्तर नि० ५, ४, ३।

उत्तम रसों वाले पदार्थों को प्रदान करने से, (५) समय पर छुट्टी देने से। गृहपति पुत्र! इन पाँचो प्रकारो से सवा किए जाने पर नौकर चाकर पाच प्रकार से मालिक पर अनुकम्पा करते हैं—(१) मालिक से पहले (बिस्तर से) उठ जाने वाले होते हे, (२) पीछे सोने वालेह ोते हैं, (३) दिये को ही लेने वाले होते हे (४) कामों को अच्छी तरह करने वाले होते हैं, (५) कीति प्रशसा फैलाने वाले होते है।"[1]

६ साधु ब्राह्मण की सेवा

'गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से कुलपुत्र को श्रमण ब्राह्मण रूपी ऊपर की दिशा की सेवा करनी चाहिए—(१) मैत्री भाव युक्त कायिक कर्म से, (त्री भाव युक्त वाचिक कर्म से, (३) मैत्री भाव युक्त मानसिक कर्म से, (४) उनके लिये खुला द्वार रखने से, (५) खान पान की वस्तु को प्रदान करने से। गृहपति पुत्र! इन पाच प्रकारों से सेवा किए गए श्रमण ब्राह्मण इन छ प्रकारों से कुलपुत्र पर अनुकम्पा करते हैं—(१) पाप से निवारण करते हैं, (२) कल्याण (भलाई) में प्रवेश करते हैं, (३) कल्याण (प्रदान) द्वारा अनुकम्पा करते हैं, (४) अ श्रुत विद्या को सुनाते हैं, (५) श्रुत विद्या को दृढ कराते हैं, (६) स्वर्ग का मार्ग बतलाते हैं।"[1]

(१) वृद्धों की सेवा

"जो धर्म को जानने वाले पण्डित पुरुष वृद्धों की सेवा करते हैं, वह यहाँ प्रशसित होते हैं तथा मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।"[1]

"जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बाते बढती हैं—(१) आयु, (२) वर्ण (रूप), (३) सुख, (४) बल।"[3]

---

१ दीघ नि० ३, ८।

२ धम्मपद १०९।

१ जातक १, ४, ३७।

"पुण्य की इच्छा से जो वर्ष भर नाना प्रकार के यज्ञ और हवन को करे, तो भी वह सरलता को प्राप्त (पुरुष) के लिए की गई अभिवादना के चतुर्थांश से भी बढ़कर नहीं है।"[1]

(२) रोगी की सेवा

"जो मेरी सेवा करना चाहे वह रोगी की सेवा करे। यदि उपाध्याय है तो उपाध्याय की जीवन भर सेवा करनी चाहिये, जब तक कि रोगी रोग से मुक्त न हो जाय। यदि आचार्य है, साथ विहार करने वाला है, शिष्य है, गुरु भाई है, तो जीवन भर सेवा करनी चाहिये।"[2]

१ धम्मपद १०८। २ वि। पिटक ३, ८ ७ ३।

आठवाँ परिच्छेद

धन की सुरक्षा

१ हितकर और अहितकर बातें

"भिक्षुओ ! सात बात गृहस्थों के लिए अहितकर है। कौन सी सात ? (१) भिक्षु के दर्शन को मना करता है, (२) सद्धर्म को श्रमण करने म प्रमाद करता है, (३) आधशीलों (श्रेष्ठ आचरणो) को नही सीखता है (४) भिक्षुओ, स्थविरों, नये तथा मध्यम आयु वालों पर नाराज रहता है, (५) दोषों को देखने वाला हो, उपारम्भ (निन्दायुक्त) चित्त से धर्म को सुनता है, (६) यहाँ (भिक्षु सघ में) होने पर भी बाहर (अन्य सघो मे) जाकर दक्षिणेय को ढूंढता है। (७) और वही आदर सत्कार करता है। भिक्षुओ ! ये सब बाते गृहस्थों के लिए अहितकर हैं।

भिक्षुओ ! सात बाते गृहस्थो के लिए हितकर है। कौन सी सात ? (१) भिक्षु के दर्शन को मना नही करता, (२) सद्धर्म को श्रमण करने में प्रमाद नही करता है, (३) आधशीलों (श्रेष्ठ आचरणों) को सीखता है, (४) भिक्षुओं, स्थविरो, नए तथा मध्यमों म प्रसाद बहुल होता है, (५) दोषो को न देखने वाला हो, उपारम्भ रहित चित्त से धर्म को सुनता है, (६) यहाँ हाने पर बाहर जाकर दक्षिणेय को नहीं ढूढता है, और (७) वहीं आदर सत्कार करता है। भिक्षुओ ! ये सात बातें गृहस्थों के लिए हितकर हैं।"[1]

---

१ अगुत्तर नि० ७, ३, ८।

२ विनाश के कारण

(१)

"हे गौतम ! हम पुरुष के विनाश के कारण को पूछने के लिए आये हैं, विनाश का क्या कारण है ?"

"धर्म को जानने वाले की वृद्धि होती है और धर्म को न जानने वाले की हानि। धर्म को चाहने वाले की वृद्धि होती है और न चाहने वाले की हानि।"

"हे गौतम ! इसे तो हम जान गये कि यह पहला विनाश का कारण है, भगवान् ! अब दूसरे विनाश के कारण को बतलाइये कि विनाश का क्या कारण है ?"

"दुष्टो से प्रेम करता है और सज्जनों से प्रेम नही करता, दुष्टों के धर्म मे रुचि रखता है, वह उसके विनाश का भी कारण है । जो निद्राशील, खेल तमाशों म मग्न, उत्साह रहित, आलसी और क्रोधी मनुष्य है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो मनुष्य सामर्थ्य होने पर भी वृद्ध, गत यौवन अपने माता पिता का भरण पोषण नही करता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो ब्राह्मण अथवा श्रमण या अन्य किसी याचक को झूठ बोलकर ठगता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो मनुष्य बहुत धन सम्पत्ति, सोना चाँदी और भोजन आदि की सामग्री के होते हुए अच्छे अच्छे पदार्थों को अकेला ही खाता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो मनुष्य जाति, धन और गोत्र का घमण्ड करने वाला होता है तथा अपने जाति-बान्धव का अपमान करता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो नर व्यभिचारी, शराबी, जुआडी होकर पाये हुए धन को उडा देता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो अपनी स्त्री से सन्तोष न कर वेश्याओं के साथ रमण करता है और पराई स्त्रियों को दूषित कर देता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो बीती हुई

जवानी वाला पुरुष तेंदू के फल सदृश स्थान वाली (कुमारी) स्त्री से विवाह करता है, वह उसकी ईर्ष्या से नही सोने पाता है (अर्थात् विना प्रेम से उस कुमारी के साथ उस विलासी वृद्ध को सुख की नींद नही आती), वह उसके विनाश का कारण है। । जो शराबी और विना विचारे खर्च करने वाली स्त्री या वैसे ही पुरुष को सम्पत्ति का अधिकार देता है, वह उसके विनाश का कारण है। । जो क्षत्रिय कुल में पैदा होकर आप तो धन हीन, दरिद्र है, परन्तु अत्य त लालची होने से राज्य पाने की प्रार्थना करता है, वह उसके विनाश का कारण है। जो विद्वान् इस विनाश के कारणों को भली प्रकार जानकर आर्य दर्शन से युक्त होता है, वह शान्ति लोक (निर्वाण) को प्राप्त हो जाता है।"[1]

(२)

"भिक्षुओं! जिस किसी कुल म महाधन सम्पत्ति होकर भी चिरस्थायी नही होती, वह चार बातो से, अथवा इनमें से किसी एक से। कौन चार? (१) (उस कुल वाले) नष्ट हुए धन की खोज नही करते हैं, (२) टूटे फूटे की मरम्मत नही करते हैं, (३) अ परमित पान भोजन करने वाले (उडाने वाले) होते हैं, (४) दु शील (दुराचारी) स्त्री या पुरुष को अधिकार दे देते हैं। भिक्षुओ! इन्ही चार बातों से अथवा इनमें स किसी एक से ही महाधन सम्पत्ति होकर भी चिरस्थायी नही होती। और भिक्षुओ! इन चार बातों से चिरस्थायी होती है। कौन चार? (१) (उस कुल वाले) नष्ट हुए धनकी खोज करते हैं, २) टूटे फूटे की मरम्मत करते हैं, (३) परिमित पान भोजन करते हैं, (४) शीलवान (सदाचारी) स्त्री या पुरुष को अधिकार देते हैं।"[2]

(३)

"ग्रामणी! कुलों के विनाश (उपघात) के आठ कारण हैं। (१) राजा द्वारा (कुल) विनाश को प्राप्त होते हैं, (२) चोरों से विनाश

१ सुत्तनिपात १, ६। २ अगुत्तर नि० ४, ६, ५।

को प्राप्त होते हैं, (३) आग से, (४) गडा अपने स्थान से चला जाता है, (६) अच्छी तरह न की हुई खेती नष्ट हो जाती है, (७) कुल मे कुल अगार पैदा होता है, वह उन भोगों को उडाता, चौपट करता, विध्वस करता है, (८) सभी वस्तुओं की अनित्यता है। ग्रामणी ! यह आठ कुलों के विनाश के कारण ह।"[1]

(४)

"कौन से छ धन सम्पत्ति के विनाश के कारण हैं ? (१) शराब नशा आदि का सेवन, (२) विकाल (सन्ध्या) म चौरस्ते की सैर म तत्पर होना, (३) नाच तमाशा का सेवन, (४) जुआ (और दूसरी) दिमाग बिगाडने वाली चीजे, (५) बुरे मित्र की मिताई, (६) आलस्य में फसना।"

नशा

"गृहपति पुत्र ! शराब नशा आदि के सेवन मे छ दुष्परिणाम हैं— (१) तत्काल धन की हानि, (२) कलह का बढना, (३) यह रोगो का घर है, (४) अयश उत्पन्न करने वाला है, (५) लज्जा का नाश करने वाला है, (६) बुद्धि (प्रज्ञा) को दुर्बल करता हे।"

चौरस्ते की सैर

"गृहपति पुत्र ! वकाल म चौरस्ते की सैर के छ दुष्परिणाम हैं— (१) स्वय भी वह अगुप्त और अरक्षित होता है (२) उसके स्त्री पुत्र भी, (३) धन सम्पत्ति भी अरक्षित होती है, (४) बुरी बातों की शका होती है, (५) झूठी बात उसपर लागू हाती है, (६) वह बहुत से दु ख कारक कामों का करने वाला होता है

नाच तमाशा

"गृहपति पुत्र ! नाच तमाशा मे छ दोष हैं—(१) आज कहाँ नाच है (इसकी परेशानी), (२) कहाँ गीत है ? (३) कहाँ वाद्य है ? (४)

---

१ सयुत्त नि० ४०, १, ६।

कहाँ आख्यान है ? (५) कहाँ हाथ से ताल देकर नृत्य गीत होता है ? (६) कहाँ कुम्भ थूण (वादन विशेष तबला) है ?"

जुआ

"गृहपति पुत्र ! जुआ के व्यसन मे छ दोष हैं— (१) जय होने पर वैर उत्पन्न होता है, (२) पराजित होने पर हारे धन की सोच करता है, (३) तत्काल धन की हानि है, (४) सभा में जाने पर उसकी बातो का विश्वास नही रहता, (५) मित्रों और अमात्यो द्वारा तिरस्कृत होता है, (६) शादी विवाह करने वाले— यह जुआडी आदमी है, स्त्री का भरण पोषण नही कर सकता, सोच (कन्या देने मे) आपत्ति करते हैं ।"

दुष्ट की मिताई

"गृहपति पुत्र ! दुष्ट की मिताई के छ दोष होते हैं—जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कड, (४) कृतघ्न, (५) वञ्चक और (६) गुण्डे (साहसिक, खूनी) होते हैं, वही इसके मित्र होते है ।"

आलस्य

"गृहपति पुत्र ! आलस्य मे पड़ने मे यह छ दोष हैं—(१) (इस समय) बहुत ठंडा है—सोच, काम नही करता, (२) बहुत गर्म है—सोच, काम नही करता, (३) बहुत सन्ध्या हो गई—सोच, काम नही करता, (४) बहुत सबेरा है , (५) बहुत भूखा हूँ , (६) बहुत खाया हूँ , । इस प्रकार बहुत-सी करणीय बातों को न करने से अनुत्पन्न भोग नही होते और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं ।"

भगवान् ने यह कहा। कहकर शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा—

"बहुत ठंडा है, बहुत गर्म है, अब बहुत सन्ध्या हो गई, इस तरह करते मनुष्य धनहीन हो जाते हैं। जो पुरुष काम करते, ठंडक और गर्मी को तृण से अधिक नहीं मानता, वह सुख से वञ्चित होनेवाला नही होता।

जो शराब पीने मे सखा होता है, (सामने ही) प्रिय बनता है (वह मित्र नही), जो काम हो जाने पर भी मित्र रहता है, वही सखा है । अति निद्रा, पर स्त्री गमन, वैर उत्पन्न करना और अनर्थ करना, बुरे की मित्रता तथा बहुत कजूसी—यह छ मनुष्यों को बरबाद कर देते हैं । बुरे मित्र वाला, पाप सखा, पापाचार म अनुरक्त मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों ही से नष्ट भ्रष्ट होता है । जुआ, स्त्री, शराब, नाच, गीत, दिन की निद्रा, असमय की सैर बुरे मित्रों का होना और बहुत कजूसी—यह छ मनुष्यो को बरबाद कर देते हैं । जो जुआ खेलते हैं, शराब पीते ह, परायी प्राण प्यारी स्त्रियो का गमन करते हैं, पण्डित का नही, नीच का सेवन करते हैं, (वह) कृष्ण पक्ष के च द्रमा जैस क्षीण होते हैं । जो शराबी, निर्धन, मुहताज, पियक्कड, प्रमादी होता है, जो पानी की तरह ऋण में अवगाहन करता है, वह शीघ्र ही अपने को व्याकुल करता है । दिन म निद्राशील, रात के उठने को बुरा मानने वाला, सदा (नशा म) मस्त, शराबी गृहस्थी नहीं चला सकता ।"[1]

३ हानि से बचने के उपाय

"लिच्छवियो ! तुम्हे मै सात पतन विरोधी धर्मो का उपदेश करूँगा, उसे सुनो, भली प्रकार मन म करो ।"

"हॉ भ ते !" कहकर उन लिच्छवियो ने भगवान् को उत्तर दिया । भगवान् ने यह कहा—"लिच्छवियो ! कौन से सात पतन विरोधी (अपरिहानीय) धर्म हैं ?

(१) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी सदा बैठक करते रहेगे, सन्निपात बहुत होगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नही ।

(२) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी एक हो बैठक करेगे, एक हो उठेगे, एक हो अपने कर्तव्यों को करेगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियो की वृद्धि ही समझना हानि नही ।

---

१ दीघ निकाय ३, ८ ।

(३) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी अप्रज्ञप्त (अवैधानिक) को प्रज्ञप्त नही करते प्रज्ञप्त का उच्छेद नही करते, जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने वज्जी धर्म (नियम) को ग्रहण कर रहेगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नही।

(४) जब तक लिच्छवियों ! वज्जी वज्जियों के जो वृद्ध हैं, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उनकी बात सुनने योग्य मानेंगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

(५) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी, जो वह कुलस्त्रियाँ हैं उन्हे छीनकर जबरदस्ती नही बसायेंगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियो की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

(६) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी वज्जियों के नगर के भीतर या बाहर जो चैत्य (देवस्थान=चौरा) है, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उनके लिए पहले किए गए दान को, पहले की गई धर्मानुसार बलि (वृत्ति) को लोप नहीं करेंगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नही।

(७) जब तक लिच्छवियो ! वज्जी अर्हन्तों की (पूज्यों की) अच्छी तरह धार्मिक रक्षा करेंगे, जिससे कि नहीं आये हुए अर्हन्त राज्य म आवें और आये हुए अर्हन्त राज्य म सुखपूर्वक विचरण करे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियो की वृद्धि ही समझना, हानि नही।

जब तक लिच्छवियो ! ये सात पतन विरोधी धर्म वज्जियों म रहेंगे, और इन सात पतन-विरोधी धर्मों में वज्जी दिखाई पडेंगे, तब तक लिच्छवियो ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नही।"[1]

४ उन्नति के छ द्वार

आरोग्यमिच्छे परम च लाभ, सील च बुद्धानुमत सुत च।
धम्मानुवत्ती च अलीनता च, अत्थस्स द्वारा पमुखा छलेते॥

---

१ अगुत्तर नि० ७, ३, १। २ जातक ८४।

आरोग्यता जो कि परम लाभ है, सर्वप्रथम उसकी इच्छा करे, शील, वृद्धों की अनुमति, श्रुत, धर्मानुसार आचरण और अनालस्य (आलस न होना)—ये अर्थ (उन्नति) के छ प्रमुख द्वार हैं।

५ धन-सम्पत्ति के मूल कारण

"गृहपति! धन सम्पत्ति के पाच मूल कारण (आदि) हैं। कौन से पाँच? (१) यहाँ गृहपति! आर्य श्रावक उद्योग, वीर्य से युक्त अपने बाहुबल और पसीना बहाकर धर्मानुसार प्राप्त भोग (धन) से अपने सुख भोगता है, उसके माता पिता, पुत्र, स्त्री, दास, कमकर भी सुख भोगते ह यह गृहपति! धन सम्पत्ति का पहला मूल कारण है।

और फिर गृहपति! आर्य श्रावक धर्मानुसार प्राप्त भोग से भिन्न-अमात्यों को सुखी करता है यह दूसरा मूल कारण है। धर्मानुसार प्राप्त भोग से जो विपत्तियाँ होती हे—अग्नि से जल से, चोर से अथवा अप्रिय उत्तराधिकारियों से—वैसी विपत्तियों को दबाता है। अपना कल्याण करता है यह तीसरा मूल कारण है। धर्मानुसार प्राप्त भोग से पाँच प्रकार की बलि (दान) करता है—(१) ज्ञाति बलि, (२) अतिथि बलि, (३) प्रेत बलि, (४) राज बलि, (५) देव बलि। यह चौथा मूल कारण है। धर्मानुसार प्राप्त भोग से जितने श्रमण ब्राह्मण मद प्रमाद से विरत, क्षमा, शान्ति के साथ केवल अपने दमन मे लगे रहते हैं, केवल अपनी समता म भिडे रहते हैं, केवल अपनी शान्ति मे जुटे रहते हैं, वैसे श्रमण ब्राह्मणों को अनुदान देता है, प्रदक्षिणा करता है, जो कि हर्ष, सुख विपाक तथा स्वर्ग की ओर ले जाने वाला होता है। यह पाँचवाँ मूल कारण है। गृहपति! ये पाँच धन सम्पत्ति के मूल कारण हैं।

यदि गृहपति! आर्यश्रावक को इन पाँच भोगों के मूल कारणों को करते हुए भोगों (धन सम्पति) की हानि होती है, तो उसे ऐसा पश्चात्ताप होता है—मेरे भोगों की हानि हो रही है। और यदि गृहपति! भोगों की वृद्धि होती है, तो उसे ऐसा होता है—'मै भोगों के मूल

कारणों को भी कर रहा हूँ और मेरे भोगो की वृद्धि भी हो रही है इस प्रकार उसे दोनों से ही प्रसन्नता होती है।"

"मैने भोगों का सेवन किया, सेवको का भरण पोषण किया, मेरी विपत्तिया टल गई, ऊर्ध्वगामी (स्वर्गगामी) दक्षिणा दिया, और पाँच बलियों को किया, सयत, शीलवान् ब्रह्मचारियों की मैंने सेवा की जिसके लिए पण्डित गृहस्थ धन की इच्छा करता है, वह सब मेरा पूर्ण हो गया। मैने पश्चात्ताप न होने वाले कार्यों को किया। आर्य-धर्म मे स्थित मनुष्य यह स्मरण करते हुए यहा भी प्रशसित होता है और मरकर स्वर्ग में प्रमोद करता है।"[1]

६ गृहस्थो का धन

"भिक्षुक! (गृहस्थों के) सात धन हैं। कौन से सात? श्रद्धाधन, शील धन, ह्री (लज्जा)-धन, ओत्तप्प (सकोच) धन, श्रुत धन, त्याग धन, और प्रज्ञा धन।

(१) भिक्षुओ! श्रद्धा-धन क्या है? यहा भिक्षुओ! आर्य-श्रावक (गृहस्थ) श्रद्धावान् होता है। तथागतकी बोधि (परम ज्ञान) का स्मरण करता है—'वह भगवान् ऐसे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हैं' इसे कहते हैं भिक्षुओ! श्रद्धा धन।

(२) भिक्षुओ! शील-धन क्या है? यहाँ आर्य श्रावक हिंसा, चोरी व्यभिचार, झूठ वचन, सुरा, मेरय, मद्य, प्रमादकारक वस्तुओं से निरत होता है। इसे कहते हैं भिक्षुओ! शील धन।

(३) भिक्षुओ! ह्री-धन किसे कहते हैं? यहाँ भिक्षुओ! आर्य-श्रावक लज्जावान् होता है। काया, वचन तथा मन के दुश्चरित्रों से लज्जा करता है। अकुशल, पाप-कर्मों से लज्जित होता है—इसे कहते हैं भिक्षुओ! ह्री-धन।

---

१ अंगुत्तर नि० ५, ५, १।

(४) भिक्षुओ ! ओत्तप्प-धन किसे कहते हैं ? यहाँ भिक्षुओ ! आर्य श्रावक ओत्तप्पी (सकोची) होता है, वह काय, वाक् और मन के दुश्चरित्रो से सकोच करता है, पाप, अकुशल धर्मों के होने से सकोच करता है । भिक्षुओ ! इसे ओत्तप्प धन कहते हैं ।

(५) भिक्षुओ ! श्रुत-धन क्या है ? यहाँ भिक्षुओ ! आर्य श्रावक बहुश्रुत, श्रुत-धन सुने हुए को याद रखने वाला है, जो वे धर्म आदि, मध्य और अन्त म कल्याण-कारक हैं, उनका उनके शब्दों और भावों सहित उपदेश करक सर्वांश म परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करता है, वैसे वम उसे मन, वचन से परिचित और धारण किये गये होते हैं । भिक्षुओ ! इसे श्रुत-धन कहते हैं ।

(६) भिक्षुओ ! त्याग-धन क्या है ? यहाँ भिक्षुओ ! आर्य श्रावक मल-मात्सर्य से रहित चित्त हो घर म वास करता है । वह मुक्त, त्यागी, खुले हाथ देने वाला, प्रसन्न चित्त से अग्रदान देने वाला, याचनीय तथा दान के सविभाग मे रत होता है । भिक्षुओ ! इसे त्याग-धन कहते हैं ।

(७) भिक्षुओ ! प्रज्ञा धन क्या है ? यहाँ भिक्षुओ ! आर्य श्रावक प्रज्ञावान् होता है, उदय अस्त को ओर जाने वाली, निर्वेद और भली प्रकार दु ख के क्षय को पहुँचाने वाली प्रज्ञा से मुक्त होता है । भिक्षुओ ! इसे प्रज्ञा धन कहते है । भिक्षुओ ! (गृहस्थों के) ये सात धन हैं ।

"श्रद्धा, शील, ह्री (लज्जा), ओत्तप्प (सकोच), श्रुत, त्याग, तथा प्रज्ञा—ये सात धन हैं । जिस स्त्री या पुरुष को यह धन हैं, वह 'अ-दरिद्र' कहा जाता है, उसका जीवन सार्थक है । इसलिए श्रद्धा शील, और धर्म दर्शन के लिए प्रसन्न मन से बुद्ध की आज्ञा का स्मरण करते हुए प्रज्ञावान् पुरुष प्रयत्न करे ।"[1]

—•—

१ अंगुत्तर नि० ७, १, ६ ।

नवाँ पारिच्छेद

मैत्री

१ अमित्र

"गृहपति-पुत्र ! इन चारो को मित्र के रूप म अमित्र (शत्रु) जानना चाहिए (१) परधन हारक मित्र को, (२) केवल बात बनाने वाले को, (३) सदा प्रियवचन बोलने वाले मित्र को, (४) उपाय (हानिकारक) सहायक मित्र का ।

(१) पर धन हारक

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से पर-धन हारक मित्र को मित्र के रूप में अमित्र जानना चाहिए—(१) पर-धन हारक होता है, (२) थोड़े धन द्वारा बहुत पाना चाहता है, (३) भय (विपत्ति) का काम करता है, (४) स्वार्थ के लिए सेवा करता है ।

(२) बातूनी

"गृहपति पुत्र ! चार बातो स केवल बात बनाने वाले मित्र को मित्र के रूप में अमित्र जानना चाहिए- (१) भूत (कालिक वस्तु) का प्रशसा करता है, (२) भविष्य को प्रशसा करता है, (३) निरथक बात की प्रशसा करता है, (४) वतमान के काम म विपत्ति दिखलाता है।

(३) खुशामदी

"गृहपति-पुत्र ! चार बातो से मीठी बात बनाने वाले (प्रिय भाणी) मित्र को मित्र के रूप में अमित्र जानना चाहिए—(१) बुरे काम में भी अनुमति देता है, (२) अच्छे काम म भी अनुमति देता है, (३) सामने प्रशसा करता है, (४) पीठ पीछे नि दा करता है ।

(४) नाश मे सहायक

"गृहपति पुत्र ! चार बातों से अपाय-सहायक मित्र क। मित्र के रूप में अमित्र जानना चाहिए—(१) सुरा, मेरय, मद्य पान (जैसे) प्रमाद के काम मे फँसने मे साथी होता है। (२) असमय मे चौरस्ता घूमने म साथी होता है, (३) नाच तमाशा देखने म साथी होता है, (४) जुआ खेलने (जैसे) प्रमाद के काम म साथी होता है।

"पर धनहारी मित्र, बात बनाने वाला मित्र, मीठी बाते करने वाला मित्र और जा अपाया म सखा हे—यह चारो अमित्र है, ऐसा जानकर पण्डित पुरुष खतरे वाले रास्ते को भाति (उन्हे) दूर से ही छोड दे।"

२. मित्र

"गृहपति पुत्र ! इन चार मित्रों को सुहृद जानना चाहिये—(१) उपकारी मित्र को (२) सुख दु ख को समान भोगने वाले मित्र को, (३) अर्थ (की प्राप्ति का उपाय) बतलाने वाले मित्र को, (४) अनुकम्पक मित्र को।

(१) उपकारी

"गृहपति पुत्र ! इन चार बातों से उपकारी मित्र को सुहृद जानना चाहिये—(१) भूल करने वाले की रक्षा करता है, (२) प्रमत्त की सम्पत्ति की रक्षा करता है, (३) भयभीत का रक्षक (शरण) होता है, (४) काम पडने पर उसे दुगुना लाभ उत्पन्न करता है।

(२) समान सुख-दुःखी

"गृहपति पुत्र ! चार बातों से समान सुख दु खी मित्र को सुहृद जानना चाहिये—(१) इसे गोप्य (बात) बतलाता है, (२) इसकी गोप्य बात को गुप्त रखता है, (३) विपत्ति में इसे नहीं छोडता, (४) इसके लिये प्राण भी देने को तैयार रहता है।

(३) हितवादी

"गृहपति पुत्र ! चार बातों से अर्थ आख्यायी (मतलब की बात

बतलाने वाला=हितवादी) मित्र को सुहृद जानना चाहिए—(१) पाप का निवारण करता है, (२) पुण्य का प्रवेश करता है, (३) अ श्रुत विद्या को सुनाता है, (४) स्वर्ग का मार्ग बतलाता है ।

(४) अनुकम्पक

"गृहपति पुत्र ! चार बातो से अनुकम्पक मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—(१) मित्र के (धन सम्पत्ति) होने पर खुश नही होता, (२) न होने पर भी खुश नही होता, (३) मित्र की निन्दा करने वाले को रोकता है, (४) प्रशंसा करने पर प्रशसा करता है ।

"जो मित्र उपकारक होता है, सुख दु ख में जो सखा बना रहता है, जो मित्र हितवादी होता है, और जो मित्र अनुकम्पक होता है—यही चार मित्र है, बुद्धिमान् ऐसा जानकर 'सत्कार पूर्वक माता पिता और पुत्र की भाँति उनकी सेवा करे ।"

३ मैत्री का ढग

"सदाचारी पण्डित मधुमक्खी की भाँति लोगो को सचय कर, प्रज्व लित अग्नि की भाँति प्रकाशमान होता है । उसके भोग (सम्पत्ति) जैसे वल्मीक बढता है, वैसे बढते हैं । इस प्रकार भोगों का सचय कर अर्थ सम्पन्न कुल वाला (जो) गृहस्थ चार भाग म भोगों को विभाजित करे, वही मित्रों को पावेगा । एक भाग को स्वय भोगे, दो भागों को काम में लगावे, और चौथे भाग को आपत्ति काल म काम आने के लिए रख छोड़े ।"[१]

४. मित्र की पहचान

"जो पुरुष लज्जा और घृणा को छोड—"मैं आपका सगा हूँ—" ऐसा कहता है, किन्तु सहायता के कार्यों को नहीं करता है—'यह मेरा (सखा) नही है' ऐसा जाने । जो मतलब को देखकर मित्रों से प्रिय वचन बोलता है, उसे कहकर न करते हुए व्यक्ति की पण्डित निन्दा

१ दीघ नि० ३, ८ ।

करते हैं। वह मित्र नही है, जो सदा भेद डालने वाले की इच्छा से छिद्रान्वेषण में लगा रहता है, अपितु मित्र वही है जिसपर वक्षस्थल पर पुत्र को सुलाने की भाँति शयन करता (निर्भर रहता) है, और जो दूसरे द्वारा अभेद्य है।"[1]

५ मैत्री की महत्ता

"दुष्ट मित्रों का सेवन न करे, न अधम पुरुषो का सेवन करे, अच्छे मित्रो का सेवन करे और उत्तम पुरुषो का सेवन करे।"[2]

"सत्पुरुष की सेवा करे और सत्पुरुष का ही साथ करे, सत्पुरुष के धर्म को जानकर कल्याण ही होता है, अकल्याण नही। सत्पुरुष की सेवा कर, साथ कर और धर्म को जानकर (व्यक्ति) सभी दु खो से मुक्त हो जाता है।"[3]

"गृहपति ! मित्र कभी तुच्छ नही होता, मित्रता अपने से छोटे से भी करनी चाहिए। बराबर वाले से भी, और श्रेष्ठ से भी। सभी अपने सिर पर आ पडे भार का वहन (ढोना) करते हैं।"[4]

"जो व्यक्ति मित्रो के साथ बिगाड (दूषण) नही करता है, वह (१) अपने घर से बाहर जाने पर बहुत खाने पीने को पाता है, बहुत से लोग उसके सहारे जीते हैं। (२) जिन जिन जनपद, निगम या राजधानियो म जाता है, सर्वत्र सम्मानित होता है। (३) इसे चोर परेशान नही करते हैं, राजा अपमान नहीं करता है, वह सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। (४) क्रोध रहित (प्रसन्न मन) अपने घर आता है, सभा म समादृत होता है और ज्ञाति बन्धुओं का उत्तम (श्रेष्ठ व्यक्ति) होता है। (५) दूसर का सत्कार करके स्वय सत्कार पाता है, दूसरों का गौरव करके गौरव युक्त होता है, प्रशसा और यश प्राप्त करता है। (६) पूजा करने वाला पूजा पाता है और वन्दना करने वाला प्रतिवन्दना,

---

१ सुत्तनिपात २,३।
२ धम्मपद ७८।
३ सयुत्त नि० १,१,४,१।
४ जातक १२१।

यश और कीर्ति को भी प्राप्त होता है। (७) जैसे आग प्रज्वलित होती है, और देवता सुशोभित होता है, वैसे ही शोभा युक्त होता है। (८) उसे गौवे प्राप्त होती हैं, खेत मे बोया हुआ खूब उपजता है, पुत्रों के लिए फल प्राप्त होता है। (९) कन्दरा, पर्वत या वृक्ष से गिरा हुआ मनुष्य, गिरकर बच जाता है, (१०) जैसे खूब जड और शाखा फैलाये हुए निग्रोध वृक्ष का पालुवा लता कुछ बिगाड नही सकती, वैसे ही उसके शत्रु उसका कुछ भी बिगाड नही सकते।"[१]

— * —

१ चतुर्भाणवार पालि ।

दसवाँ परिच्छेद

शासन

१ धार्मिक शासक का राष्ट्र सुखी

"भिक्षुओ ! जिस समय शासक (राजा) अधार्मिक होता है, उस समय राज कर्मचारी भी अधामिक होते हैं। राजकर्मचारियों के अधार्मिक होने से ब्राह्मण तथा गृहपति (वैश्य) भी अधामिक होते हैं। ब्राह्मणों तथा गृहपतियों के अधामिक होने से उस समय नागरिक और देहाती भी अधार्मिक हो जाते हैं। उनके अधार्मिक होने से चन्द्र, सूर्य भी विषम हो जाते हैं। चन्द्र सूर्य के विषम हो जाने से नक्षत्र एव तारे भी विषम हो जाते हैं। नक्षत्र और तारों के विषम होने से रात्रि और दिन भी विषम हो जाते हैं। रात्रि और दिन के विषम हो जाने से पक्ष और मास भी विषम हो जाते हैं। पक्ष और मास के विषम होने से ऋतु और वर्ष भी विषम हो जाते हैं। ऋतु एव वर्ष के विषम होने से वायु भी विषम चलती है। वायु के विषम चलने से देवता भी कुपित हो जाते हैं। देवों के कुपित हो जाने से ठीक समय पर पानी नही बरसता। ठीक समय पर पानी नही बरसने से अच्छी फसल नही होती। फसल के ठीक न होने से मनुष्य कुरूप, दुर्बल तथा रोगी हो जाते हैं।

और भिक्षुओ ! जिस समय राजा धार्मिक होता है, उस समय राज कर्मचारी (आदि) सभी धार्मिक और अनुकूल होते हैं ' फसल अच्छी होती है। फसल अच्छी होने से मनुष्य भी उसका उपभोग कर दीर्घायु, रूपवान्, बलवान तथा निरोग होते हैं।

"जिस प्रकार साँड के पीछे पीछे चलती हुई गायें, नेता (साँड) के टेढे जाने पर सभी टेढे ही जाती हैं, इसी प्रकार मनुष्यों में जो सर्व

सम्मत (राजा) होते हैं, वे यदि अधर्माचरण करते हैं, तो अन्य लोगों का क्या कहना ? यदि राजा अधार्मिक हो जाता है, तो सारा राष्ट्र दुःख को प्राप्त होता है।"

"जिस प्रकार साँड के पीछे पीछे चलती हुई गाये नेता (साँड) के सीधे जाने पर सभी सीधे ही जाती हे, इसी प्रकार मनुष्यों म जो सर्वसम्मत (राजा) होते हैं, वे यदि धर्माचरण करते हैं, तो अन्य प्रजा का क्या कहना ? यदि राजा धार्मिक होता है, तो सारा राष्ट्र सुख को प्राप्त होता है।"[1]

२ दस राज धर्म

"राजा म इन दस बातों का होना आवश्यक है—

(१) दान, (२) शील, (३) परित्याग, (४) ऋजु भाव (सीधापन), (५) मृदुता (मृदु स्वभाव का होना), (६) तप, (७) अक्रोध (क्रोधरहित), (८) अविहिंसा (हिंसा से विरत), (९) क्षान्ति (सहन करने की शक्ति), और (१०) अविरोध (विरोध शून्यता)।"[2]

३ शासक के कर्त्तव्य

"देव ! वह आर्य चक्रवर्ती व्रत क्या है ?"

"तात ! तो तुम अपने आश्रितों मे, सेना मे, क्षत्रियों में, अनुयायियों म, ब्राह्मणों म, गृहपतियों मे, नैगमों और जानपदों म, श्रमण और ब्राह्मणों म, मृग और पक्षियों मे धर्म ही के लिए, धर्म का सत्कार करते, गुरुकार करते, सम्मान करते, पूजन करते, श्रद्धाभाव रखते, धर्मध्वज हो, धर्मकेतु हो, धर्माधिपति हो, सभी धार्मिक बातों की रक्षा करने के लिए विधान करो।

तात ! तुम्हारे राज्य में कहीं भी अधर्म न होने पावे। तात ! जो तुम्हारे राज्य मे निर्धन हैं, उन्हे धन दो। जो तुम्हारे राज्य में श्रमण और ब्राह्मण मद प्रमाद से विरत हो क्षान्ति के अभ्यास में लगे हैं। केवल

---

१ अंगुत्तर नि० ४, २, १०। २ जातक १७२।

आत्म दमन, केवल आत्म शमन, केवल आत्म निर्वापन (शान्ति करण) करते हैं, उनके पास समय समय पर जाकर पूछना चाहिए—भन्ते ! क्या अच्छा है, क्या बुरा है, क्या सदोष है, क्या निर्दोष है, क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय है, क्या करने से मेरा भविष्य अहित और दु ख के लिए होगा, क्या करने से मेरा भविष्य हित और सुख के लिए होगा ? उनके कहे हुए को सुन, जो बुरा है उसका त्याग करो, और जो भला है उसको ग्रहण करके पालन करो। तात ! यही चक्रवर्ती व्रत है।"[1]

४ निर्भय शासक

"भिक्षुओ ! पाच बातों से युक्त राजा जिस जिस ओर जाता है, अपने ही राज्य म विहार करता है। कौन सी पाँच ? (१) यहाँ भिक्षुओ ! वह माता पिता दोनों स सुजात होता है। माता पिता दोनों ओर के पितामहो की सात पीढी तक, विशुद्ध वश वाला होता है और होता है जाति वाद से अ क्षिप्त, अ निन्दित। (२) आढ्य होता है, महाधनी तथा महाभोग स युक्त होता है और होता है उसका कोष्ठागार परिपूर्ण। (३) चतुरङ्गिनी सेना से युक्त एव शक्ति सम्पन्न होता है और होता है स्वय विचार करने वाला। (४) पण्डित, मेधावी होता है, भूत, भविष्यत् और वतमान के अथो को सोचने वाला होता है। (५) वह इन चार बातों को पूर्ण कर पाचवे यश को प्राप्त हो, जिस जिस ओर जाता है, अपने ही राज्य म विहार करता है। सो किस कारण ? भिक्षुओ ! राजा ऐसे ही होते हैं।"[2]

५ धार्मिक शासक

"भिक्षुओ ! पाच बातों से युक्त राजा धर्म ही के साथ शासन करता है। कौन सी पाँच ? (१) यहाँ भिक्षुओ ! राजा अर्थ को जानने वाला होता है। (२) धर्म को जानने वाला होता है। (३) यात्रा को

---

१ दीघ नि० ३, ३। २ अगुत्तर नि० ५, ४, ४।

जानने वाला होता है। (४) समय को जानने वाला होता है। (५) परिषद् को जानने वाला होता है।"[१]

— * —

विशेष—

राजा के चार गुण

"भन्ते! आप जो कहते हैं कि चक्रवर्ती राजा के चार गुण होने चाहिए, वे कौन से हैं?"

"महाराज! (१) वह चार संग्रह वस्तुओं से अपनी प्रजा को अपनी ओर किए रखता है, (२) राज्य में चोर लुटेरों को नहीं उठने देता है, (३) दिन प्रतिदिन अच्छे बुरे की जाँच करते हुए, समुद्र पर्यन्त महापृथ्वी पर चक्कर लगाता है, (४) और बाहर तथा भीतर दोनों जगह कड़ी रखवाली बैठाता है।"

— मिलिन्द पञ्हो ६, ३, ३०।

— * —

१ अंगुत्तर नि० ५, ४, १।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

शुद्धि

१ यथार्थ शुद्धि क्या है ?

"चुन्द ! तुझे किसकी शुद्धि पसन्द है ?"

"भन्ते ! जो भूमिशायी, कमण्डलधारी, सेवालधारी, अग्नि-परिचरण करने वाले तथा सदा जल म नहाने वाले ब्राह्मण बतलाते हैं, उन्हीं की शुद्धि मुझे अच्छी लगती है।"

"चुन्द ! वे भूमिशायी कमण्डलधारी किस प्रकार शुद्धि को बतलाते हैं ?"

'भन्ते ! वे अपने शिष्यों को इस प्रकार बतलाते हैं—'हे पुरुष ! तुम प्रात ही शयन से उठकर पृथ्वी का स्पश करो, यदि पृथ्वी का स्पर्श न करो तो गाय के गीले गोबर का स्पर्श करो, यदि गाय के गीले गोबर का स्पश न करो, तो हरे तृणो का स्पर्श करो, यदि हरे तृणों का स्पर्श न करो, तो अग्नि परिचरण करो, यदि अग्नि परिचरण न करो, तो हाथ जोडकर सूर्य का नमस्कार करो, यदि अञ्जलिबद्ध सूर्य का नमस्कार न करो तो सुबह, शाम, दोपहर तीनो समय स्नान करो।"

"चुन्द ! वे ब्राह्मण अन्यथा ही शुद्धि को बतलाते हैं, और आर्य-विनय (आर्य धर्म) में वह अन्यथा होती है।"

"भन्ते आर्य-विनय म किस प्रकार शुद्धि होती है ? अच्छा हो भन्ते ! भगवान् मुझे वैसे धर्म का उपदेश करे, जैसे कि आर्य-विनय में शुद्धि होती है।"

'तो चुन्द ! सुनो, अच्छी तरह मन में करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते !" कह चु दकुमार पुत्र ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने इस प्रकार कहा —

"चुन्द ! काया द्वारा तीन प्रकार की अशुद्धि होती है, चार प्रकार की वचन द्वार और तीन प्रकार की मन द्वारा। चुन्द ! कैसे काया द्वारा तीन प्रकार की अशुद्धि होती है ? यहा चुन्द ! कोई (१) हिंसक होता है ~ (२) चोर होता है (३) व्यभिचारी होता है । चुन्द ! तीन कायिक अशुद्धि ह। कैसे चुन्द ! चार प्रकार की वाचिक अशुद्धि होती है ? यहाँ चु द ! कोई (१) मिथ्याभाषी होता है । (२) चुगुलखोर होता है । (३) कटुभाषी होता हे । (४) प्रलापी (बकवादी) होता हे ~ । इस प्रकार चुन्द ! चार प्रकार की वाचिक अशुद्धि होती है ? कैसे चुन्द। तीन प्रकार की मानसिक अशुद्धि होती है ? यहाँ चुन्द ! कोई (१) लाभी होता है । (२) द्वेषपूर्ण सकल्प वाला होता हे । (३) मिथ्यादृष्टि (उल्टी धारणावाला) होता है । इस प्रकार चुन्द ! तीन प्रकार की मानसिक अशुद्धि होती है।

चुन्द ! ये दस अकुशल कर्म पथ हैं। चुन्द ! इन दस अकुशल कर्म पथो से युक्त व्यक्ति शयन से उठकर यदि पृथ्वी का स्पर्श करता है, तो भी अशुद्ध ही होता है, यदि पृथ्वी का स्पर्श नही करता है, तो भी अशुद्ध ही होता है। यदि गाय के गीले गोबर को, हरे तृणों को स्पर्श करता है तो भी अशुद्ध ही होता है, यदि स्पर्श न करे तो भी अशुद्ध ही होता है। यदि अग्नि परिचरण करता है तो भा, यदि नहीं करता है तो भी अशुद्ध ही होता है। यदि हाथ जोडकर सूर्य को नमस्कार करता है या नही, यदि तीनो पहर स्नान करता है या नही, अशुद्ध ही हाता है। सो किस कारण ? चुन्द ! ये दस अकुशल कर्म पथ अशुद्ध ही होते हैं और होते हैं अशुद्ध करने वाले। चुन्द ! इन दस अकुशल कर्म पथों से युक्त होने से मनुष्य नरक म जाते हैं, पशु योनि और प्रेत्य विषय (भूत प्रेत) म उत्पन्न होते हैं। इन्हे बतलानेवाले की भी दुर्गति होती है।

चुन्द ! तीन प्रकार की कायिक शुद्धि होती है, चार प्रकार की वाचिक और तीन प्रकार की मानसिक । कैसे चुन्द ! तीन प्रकार की कायिक शुद्धि होती है ? यहाँ चुन्द ! कोई पुरुष (१) हिंसा छोड हिंसा से विरत होता है । (२) चोरी को छोड अदिन्नादान (चोरी) से विरत होता है । (३) व्यभिचार छोड, व्यभिचार से विरत होता है । इस प्रकार चुन्द ! तीन प्रकार की कायिक शुद्धि होती है । कैसे चुन्द ! चार प्रकार की वाचिक शुद्धि होती है ? यहाँ चुन्द ! कोई पुरुष (१) मिथ्याभाषण को छोड मिथ्याभाषण से विरत होता है । (२) चुगुली को छोड चुगुली से विरत होता है । (३) कटु वचन को छोड, कटुवचन से विरत होता है । (४) प्रलाप को छोड, प्रलाप से विरत होता है । इस प्रकार चुन्द ! चार प्रकार की वाचिक शुद्धि होती है । कैसे चुन्द ! तीन प्रकार की मानसिक शुद्धि होती है ? यहाँ चुन्द ! कोई पुरुष (१) निर्लोभी होता है । (२) द्वेष रहित सकल्पवाला होता है । (३) सम्यक् दृष्टि (ठीक धारणावाला) होता है । इस प्रकार चुन्द ! तीन प्रकार की मानसिक शुद्धि होती है ।

चुन्द ! ये दस कुशल कर्म पथ हैं । चुन्द ! इन दस कुशल कर्म पथो से युक्त व्यक्ति शयन से उठकर यदि पृथ्वी का स्पर्श करता है, तो भी शुद्ध होता है, यदि नही स्पर्श करता है तो भी शुद्ध होता है । यदि तीनों पहर स्नान करता है तो भी शुद्ध होता है, यदि नही स्नान करता है तो भी शुद्ध होता है । सो किस कारण ? चुन्द ! ये दस कुशल कर्म पथ शुद्ध ही होते हैं और होते हैं शुद्ध करने वाले । चुन्द ! इन दस कुशल कर्म पथों से युक्त होने से (मनुष्य) देवता होते हैं, मनुष्य होते हैं, अन्य सभी सद्गतियों को प्राप्त होते हैं ।"[1]

२ नदी मे नहाने से शुद्धि नही

"क्या आप गौतम ! स्नान के लिए बाहुका नदी चलेंगे ?"

---

१ अंगुत्तर नि० १०, २, १० ।

"ब्राह्मण ! बाहुका नदी से क्या है ? बाहुका नदी क्या करेगी ?"

"हे गौतम ! बाहुका नदी लोकमान्य है, बाहुका नदी बहुत जनों से पवित्र मानी जाती है। बहुत से लोग बाहुका नदी में (अपने) किए पापों को बहाते हैं।"

तब भगवान् ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण को गाथाओं मे कहा—

"बाहुका, अधिकक्क, गया, सुन्दरिका, सरस्वती, प्रयाग तथा बाहुमती नदी में काले कर्मों वाला मूढ, चाहे नित्य नहाए, किन्तु शुद्ध नहीं होगा। भला क्या करेगी सुन्दरिका, क्या करेगा प्रयाग और क्या करेगी बाहुलिका नदी ? वह पापकर्मा, बुरे कर्मों को किया हुआ दुष्ट नरक को नहा शुद्ध कर सकते। शुद्ध नर के लिए सदा ही फल्गू है, शुद्ध के लिए सदा ही उपोसथ है, शुद्ध और पवित्र कर्म करने वाले के व्रत सदा ही परे होते रहते हैं।

ब्राह्मण ! यहीं नहा, सभी प्राणियों का क्षेम कर, यदि तू झूठ नहीं बोलता, यदि प्राण नहीं मारता यदि बिना दिए नहीं लेता और हे श्रद्धावान् मात्सर्य रहित, तो गया जाकर क्या करेगा ? क्षुद्र जलाशय भी तेरे लिए गया है।"[1]

"यहाँ बहुत से मनुष्य (शुद्ध होने के लिए) नहाते हैं, किन्तु किसी की जल द्वारा शुद्धि नहीं होती, अपितु जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुद्ध है और वही ब्राह्मण है।"[2]

"जिस पुरुष की आकांक्षायें समाप्त नहीं हो गई हैं, उस मनुष्य की शुद्धि, न नंगे रहने से, न जटा से, न कीचड (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कडी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से, न उकडूँ बैठने से होती है।"[3]

"हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा और मृग चर्म के पहनने

---

१ मज्झिम नि० १, ७। ३ धम्मपद १४१

२ उदान १, ९।

से तेरा क्या? भीतर (दिल) तो तेरा (राग आदि मलो से) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है?"[1]

"ब्राह्मण! यह सत्य है कि तुम जल शुद्धि वाले हो, जल से शुद्धि चाहत हो, सुबह शाम जल से स्नान करने में लगे हुए रहते हो?"

"हा, हे गौतम!"

"ब्राह्मण! तुम क्या लाभ देखकर ऐसा कर रहे हो?"

'हे गौतम! मेरे द्वारा दिन म जो पाप कर्म किया होता है, उसे सन्ध्या के स्नान स धो डालता हूँ, जो रात म पाप कर्म किया होता है, उसे प्रात के स्नान से धो डालता हूँ। हे गौतम! इस लाभ को देखकर मै जल शुद्धि वाला हो, जल से शुद्धि चाहते सुबह शाम जल से स्नान करने म लगा रहता हूँ।"

'ब्राह्मण! धर्म ह्रद (जलाशय) है, शील घाट (तीर्थ) है, वह निमल और सत्पुरुषों से प्रशसित है, जहाँ पर ज्ञानी लोग स्नान करते हैं और बिना भीगे शरीर ही पार तर जाते है।"[2]

३ अग्नि हवन करना व्यर्थ

"भन्ते! जटिल (जटाधारी) साधु नाना प्रकार के मिथ्या-तप (अग्नि हवन आदि) करते है। इनसे कुछ उन्नति होती है?"

"भिक्षुओ! इनसे कुछ लाभ नहीं। पुराने पण्डितों ने 'अग्नि-हवन करने से उन्नति होगी' समझ, चिरकाल तक अग्नि हवन किया। लेकिन जब उससे हानि ही होती देखी, तो उन्होंने उसे पानी डालकर बुझा दिया और शाखा आदि से पीटकर चले गए। फिर मुडकर उस तरफ देखा तक नही।"[3]

—✱—

१ धम्मपद ३९४। २ सयुक्त नि० १, ७, २, ११।
३ जातक १६२।

बारहवाँ परिच्छेद

श्राद्ध

१ क्या प्रेत्य पाते है ?

"हे गौतम ! जो हम लोग ब्राह्मणों का दान देते हैं, श्राद्ध क त है कि 'यह दान मरे हुए ज्ञाति बन्धुओं को मिले, एव इस दान का वे ज्ञाति ब धु उपभोग करे, सो क्या हे गौतम ! वह दान मरे हुए ज्ञाति बन्धुओं को प्राप्त होता है और क्या वे उसका उपभोग करते हैं ?"

"ब्राह्मण ! स्थान मे मिलता है, अस्थान में नही मिलता।"

"हे गौतम ! कौन ! से स्थान हैं और कौन से अस्थान ?

(१) 'यहाँ ब्राह्मण ! एक पुरुष हिंसक, चोर, व्यभिचारी, मिथ्या भाषी, चुगुलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेष चित्त वाला तथा मिथ्या-दृष्टि होता हैं। वह काया को छोड, मरने के बाद नरक म उत्पन्न होता है। जो नरक में रहने वाले प्राणियों का आहार है, उससे वह वहाँ निर्वाह करता है। उससे वह वहाँ ठहरता है। ब्राह्मण ! यह भी अस्थान है, जहाँ रहने से उसे दान नही प्राप्त होता।

(२) यहाँ ब्राह्मण ! एक पुरुष जीवहिसक मिथ्या दृष्टि होता है। वह काया छोड, मरने के बाद पशु योनि म उत्प न होता है। जो पशु योनि में रहने वाले प्राणियों का आहार है, उससे वह वहाँ निर्वाह करता है, उससे वह वहाँ ठहरता है। ब्राह्मण ! यह भी अ स्थान है, जहाँ रहने से उसे दान नहीं प्राप्त होता।

(३) यहाँ ब्राह्मण ! एक पुरुष जीवहिसा, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, चुगलखोरी, कटुभाषण, बकवाद से विरत होता है। निर्लोभी, द्वेष रहित चित्त वाला और सम्यक् दृष्टि होता है। जो मनुष्यों का आहार

है, उससे वह वहाँ ठहरता है। ब्राह्मण ! यह भी अस्थान है, जहाँ रहने से उसे दान नही प्राप्त होता।

(४) यहाँ ब्राह्मण ! एक पुरुष जीवहिंसा से विरत होता है—और सम्यक् दृष्टि होता है। वह काया को छोड मरने के बाद देवताओ की सहव्यता में उत्पन्न होता है। जो देवताओ का आहार है, उससे वह वहा ठहरता है। यह भी ब्राह्मण अस्थान है, जहा रहने से उसे दान नही प्राप्त होता।

(५) यहा ब्राह्मण ! एक पुरुष जीवहिंसक मिथ्या-दृष्टि होता है। वह काया को छोड मरने के बाद प्रेत्य (प्रेत) हो उत्पन्न होता है, जो प्रेत्यों का आहार है, उससे वह वहाँ निर्वाह करता है, उससे वह वहा ठहरता है। जो उसके मित्र, अमात्य, ज्ञाति, भाई बन्धु दान देते हैं, उससे वह वहाँ ठहरता है। ब्राह्मण यह स्थान है, जहा ठहरने से उसे दान प्राप्त होता है।"

"हे गौतम ! यदि वह प्रेत्य उस स्थान पर नहा उत्पन्न होता है, तो कौन उस दान का उपभोग करता है?"

"ब्राह्मण ! दूसरे प्रेत्य उस स्थान में उत्पन्न हाते हैं, वे उस दान का उपभोग करते हैं।"

"हे गौतम ! यदि वह प्रेत्य ज्ञाति बन्धु उस स्थान पर नही उत्पन्न होता है और दूसरे भी प्रेत्य ज्ञाति बन्धु उस स्थान पर नही उत्पन्न हाते हैं, तब कौन उस दान का उपभोग करता है?"

"ब्राह्मण ! यह सम्भव नहीं कि वह स्थान इतने दीर्घकाल से प्रेत्य-ज्ञाति-बन्धुओं से खाली हो। ब्राह्मण ! दायक भी उसका फल पाता ही है।"[1]

२ श्राद्ध करना आवश्यक है

"(प्रेत्य) अपने घर आकर दीवारों के बाहर, बडेरी और द्वार के

---

१ अंगुत्तर नि० १०, ? ११।

दोनो ओर खडे होते हैं। उन सत्वों के कर्म के कारण बहुत अन्न, खाद्य-भोज्य के प्रस्तुत होने पर उन्हे कोई नही स्मरण करता है। कि तु जो लोग अनुकम्पक होते हैं वे ऐसे ज्ञातियो को पवित्र, उत्तम, विहित पान भोजन समयानुसार देते ह—"यह हम लोगो के ज्ञातियो के लिए हो, हमारे ज्ञाति सुखी हो।" और वे भी मरे हुए ज्ञाति वहाँ आकर उस बहुत अन्न पान का सत्कारपूर्वक अनुमोदन करते है—"हमारे ज्ञाति चिरञ्जीवी हो, जिनके कारण कि हम पा रहे हैं, और हमारे लिए की गई पूजा दायको को भी फलप्रद हो।"

वहा (प्रेत्य-योान में) न खेती होती है, न गोपालन (आदि काम) होता हें, सोने (चाँदी) द्वारा क्रय विक्रय करने वाला न कोई वैसा व्यापार ही है। मरे हुए प्रेत्य केवल इस दान से ही वहाँ यापन करते है। जैसे ऊँचे स्थान पर वर्षा हुआ जल नीचे की ओर बहता है, उसी प्रकार यहाँ का दिया हुआ दान प्रेत्यों को मिलता है। जैसे जल से भरी नदियाँ सागर को भरती हैं, उसी प्रकार यहाँ का दिया हुआ दान प्रेत्यों को मिलता है।

"(वे) मुझे दिय थे, मेरे लिए किए थे, मेरे ज्ञाति, मित्र और सखा थे" (ऐसे) पहले किये हुए कर्मों का स्मरण करते हुए प्रेत्यों को दान देना चाहिए। रोना, शोक या विलाप करना प्रेत्यों के हित के लिए नहीं होता। ज्ञाति ऐसे हो रह जाते हैं। किन्तु यह सघ में दी गई (सघगत) दाक्षिणा उसक चिरकाल तक हित के लिए होती है और उचित ढग से उसे प्राप्त होती है।"[1]

२ हिसा रहित श्राद्ध

"भन्ते! मनुष्य बहुत स प्राणियो की प्राण हानि कर श्राद्ध देते हैं। क्या भन्ते! इससे ऐसा करनेवालों की उन्नति (लाभ) होती है?

१ खुद्दकपाठ ७।

"भिक्षुओ! श्राद्ध करने के विचार से प्राण हानि करने वाले की कुछ भी उन्नति नहीं है।"[1]

— * —

विशेष

श्राद्ध का फल

"भन्ते! मरे हुए पुरखो को दान देने पर किनको मिलता है और किनको नहीं?"

(१) "महाराज! जो नरक मे पड गए हैं, (२) जो स्वर्ग पहुँच गये हैं, (३) जो पशुपक्षी आदि नीची योनियों म जन्म ले लिए हैं—उन्हे वह दान नही मिलता, और नही मिलता है प्रेत्य योनि म आए हुए तीन प्रकार के पुरखों को—(१) वन्तासिक (वमन को खाने वाले), (२) खुप्पिपासी (जो भूख और प्यास से बेचैन रहते हैं), और (३) निज्कामतण्हिक (प्यास से जलते हुए)। हाँ, जो 'परदत्तोपजीवी' प्रेत हैं, उन्हे अवश्य मिलता है, किन्तु वह भी स्मरण करने ही से।"

"भन्ते! तब तो उनका दान निरर्थक होता है। जिसका कुछ फल ही नही, जिसके नाम से दान दिया जाता है, उसे कोई पुण्य न मिलने से वह बेकार ही हुआ।"

"नही, महाराज! वह दान विना किसी फल वाला और बेकार नहीं हुआ। देनेवाले को ही उसका फल मिलता है।"

मिलिन्द पञ्हो ४, ८, ७५।

— * —

---

१ जातक १, २, १८।

तेरहवाँ परिच्छेद

भावना

"साधु! साधु!! महानाम, तुम्हारे जैसे कुलपुत्रों को यह उचित है, जो तुम तथागत के पास आकर पूछते हो—'भन्ते! हम लोगों को किस विहार से विहरना चाहिए?' महानाम! आराधक (साधक) को श्रद्धालु होना चाहिए, अश्रद्धालु नहीं। उद्योगी होना चाहिए, अन् उद्योगी नहीं। सदा उपस्थित स्मृति होना चाहिए, नष्ट स्मृतिवाला नहीं। एकाग्रचित्त होना चाहिए, असमाहित चित्त नहीं। प्रज्ञावान् होना चाहिए, दुष्प्रज्ञ नहीं। महानाम! तुम इन पाँच धर्मों में स्थित होकर छ उत्तर धर्मों (श्रेष्ठ बातों) की भावना करो—

(१) महानाम! तुम अपने त्याग (दान) को स्मरण करो 'मुझे लाभ है, मुझे बड़ा लाभ हुआ, जो मैं मल मात्सर्य से लिप्त जनता में मल मात्सर्य से रहित चित्त हो, मुक्तदानी, खुले हाथ देने वाला, दान सविभाग में रत हो गृहस्थी में वास कर रहा हूँ।'

२ (ति) फिर महानाम! तुम तथागत का अनुस्मरण करो—

'इपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो लोकविदू अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि सत्था, देवमनुस्सान बुद्धो भगवा' ति।'

['वह भगवान् ऐसे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या और आचरणों से युक्त, सुगत, लोक विद्, दमनीय पुरुषों के लिए सर्वोत्तम सारथी, देव मनुष्यों के शास्ता बुद्ध (परम ज्ञानी) और भगवान् हैं।']

जिस समय महानाम! आर्य श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त न राग से लिप्त होता है, न द्वेष और न

मोह से। उस समय उसका चित्त सीधा होता है। तथागत के प्रति सीधे चित्त वाला हो आर्य श्रावक अर्थ-वेद को प्राप्त होता है, धर्म-वेद को प्राप्त होता है, धर्म से युक्त चैतसिक आनन्द को प्राप्त होता है। आनन्दित पुरुष को प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतिमान् का शरीर स्थिर होता है। स्थिर काय सुख का अनुभव करता है। सुखित का चित्त एकाग्र होता है। महानाम! तुम बुद्धानुस्मृति को प्राप्त कर भावना करो। बैठे भी भावना करो, लेटे भी भावना करो, खेती की देखरेख करते भी, पुत्रों से घिरी शय्या पर भी।

(३) फिर महानाम! तुम धर्म का अनुस्मरण करो—

'स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सदिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यको पच्चत्त वेदितब्बो विञ्ञूही' ति।'

['भगवान् का धर्म भली प्रकार कहा गया है, तत्काल फलदायक 'है समयान्तर म नहीं, यही दिखाई देने वाला है, निर्वाण को पहुँचाने वाला और विज्ञों से अपने आप ही जानने योग्य है।'

जिस समय महानाम! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त एकाग्र होता है।...

(४) फिर महानाम! तुम सघ को अनुस्मरण करो—

'सुपटिपन्नो भगवतो सावकसघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसघा, सामीचि पटिपन्नो भगवतो सावकसघो, यदिद चत्तारि पुरिस युगानि, अट्ठपुरिस पुग्गला एस भगवतो सावकसघो, आहुनेय्यो, पाहुनेय्यो, दक्खिनेय्यो, अञ्जलिकरनेय्यो अनुत्तर पुञ्ञक्खेत्त लोकस्सा' ति।'

['भगवान् का श्रावक सघ सुप्रातपन्न है। भगवान् का श्रावकसघ सीधे माग पर आरूढ है। ठीक से प्रतिपन्न है। यही भगवान् का श्रावक-सघ है जो चार पुरुष युगल, आठ पुरुष पुद्गल (व्यक्ति) हैं। यह

बुलाने योग्य, पाहुन बनाने योग्य, दान देने योग्य, अञ्जलि जोडने योग्य और लोक के पुण्य करने का क्षेत्र है।']

जिस समय महानाम ! आर्य श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है — उसका चित्त एकाग्र होता है। |

(५) फिर महानाम ! तुम अखण्ड (पूर्ण), अ-छिद्र, धब्बे और कल्मष से रहित (निष्पाप) उचित, विज्ञो से प्रशंसित, अनिन्दित, अपने शीलों को अनुस्मरण करो। जिस समय महानाम ! आर्य श्रावक शील का अनुस्मरण करता है, उसका चित्त एकाग्र होता है ।

(६) फिर महानाम ! तुम देवताओं को अनुस्मरण करो—(१) चातुर्महाराजिक देवता हैं, (२) तावतिंस के देवता हैं, (३) याम, (४) तुषित, (५) निर्माणरति, (६) परनिर्मितवशवर्ती, (७) ब्रह्मकायिक, (८) उनसे ऊपर के देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से वह देवता यहाँ से मरकर वहाँ उत्पन्न हुए। मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है। शील, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा है।

जिस समय महानाम ! आर्य श्रावक अपने और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा को स्मरण करता है उसका चित्त एकाग्र होता है।

इसे कहते हैं महानाम ! आर्य श्रावक विषम प्रजा में समता को प्राप्त हो विहरता है। द्रोह युक्त प्रजा में अद्रोह युक्त हो विहर रहा है। धर्म स्रोत में प्रवृत्त हो देवतानुस्मृति की भावना कर रहा है। महानाम ! इस देवतानुस्मृति को तुम चलते भी भावना करो, खड़े भी, लेटे भी, खेती की देखरेख करते भी, पुत्रों से घिरी शय्या पर भी।"[1]

"भिक्षुओ ! छः धर्मों से युक्त तपस्वी गृहस्थ तथागत में श्रद्धावान् हुए अमृतदर्शी हो, अमृत (निर्वाण) के साक्षात्कार के लिए उद्योग करता है। कौन छः ? (१) बुद्ध में अत्यन्त श्रद्धा रखता है, (२) धर्म

१ अंगुत्तर नि० ११, २, १।

में अत्यन्त श्रद्धा रखता है, (३) संघ में अत्यन्त श्रद्धा रखता है, (४) आर्य शीलों में, (५) आर्य ज्ञान मे, और (६) आर्य विमुक्ति मे अत्यन्त श्रद्धा रखता है।"[1]

"जिनको दिन रात बुद्ध, धर्म, संघ विषयक स्मृति बनी रहती है, वह गौतम (बुद्ध) के शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।"[2]

— * —

विशेष —

गृहस्थ को निर्वाण की प्राप्ति

"भन्ते ! क्या कोई गृहस्थ है जो अपने घर पर सभी कामों का भोग करते, स्त्री और बालबच्चों के साथ रहते, रुपये पैसे के फेर में रहते और मणि मोती-सोना के आभूषण को सिर मे लगाते हुए ही परम शान्त पद निर्वाण का साक्षात् कर लिया हो ?"

"महाराज ! न एक सौ, न दो सौ, न तीन, चार, पाच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड, न लाख करोड, ऐसे गृहस्थ हो चुके हैं, जिन्होंने निर्वाण का साक्षात् किया है। महाराज ! दस, बीस, सौ, या हजार की गिनती को तो छोड दें, मै किस तरह आपको समझाऊँ ?"

—मिलिन्दपञ्हो ५, २ ।

— ० —

१ अंगुत्तर नि० ६, १, ९ ।   २ धम्मपद २१, ७, ६ ।

चौदहवाँ परिच्छेद

शिष्टाचार

१ दातौन करने के लाभ

"भिक्षुओ! दातौन न करने के पाँच दोष हैं। कौन पाँच? (१) आँख की ज्योति घटती है, (२) मुँह से दुर्गन्ध आती है, (३) रस-हारिणी नाडियाँ शुद्ध नहीं होती हैं, (४) पित्त और श्लेष्मा भोजन से लिपट जाते हैं, (५) भोजन नहीं रुचता है। भिक्षुओ! दातौन न करने के य पाँच दोष हैं।

'भिक्षुओ! दातौन करने के पाँच लाभ हैं। कौन पाँच? (१) आँख की ज्योति बढती है, (२) मुँह दुर्गन्धवाला नहीं होता है, (३) रस-हारिणी नाडयाँ शुद्ध होती हैं, (४) पित्त और श्लेष्मा भोजन से नही लिपटते हैं, (५) भोजन रुचता है। भिक्षुओ! दातौन करने के ये पाच लाभ हैं।"[1]

२ मित भाषण

"भिक्षुओं! बहुत बोलनेवाले पुरुष म पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) झूठ बोलता है, (२) चुगलखोरी करता है, (३) कटु-वचन बोलता है, (४) बकवाद करता है, (५) काया छोड मरने के बाद नरक में उत्पन्न होता है।

भिक्षुओ! कम बोलनेवाले पुरुष के पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) झूठ नहीं बोलता है, (२) चुगली नहीं करता है, (३) कटु-

---

१. अगुत्तर नि० ५, १, ८।

वचन नहीं बोलता है, (४) बकवाद नहीं करता है, (५) काया छोड़ मरने के बाद स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।"[1]

३ मात्रा से भोजन

"जो पुरुष आलसी, बहुत खानेवाला, निद्रालु, करवट बदल बदल कर सोनेवाला तथा दाना देकर पाले मोटे सूअर की भाँति होता है, वह मन्द बार बार गर्भ में पड़ता है।"

"सदा स्मृतिमान् मनुष्य की वेदना कम होती है, (उसका खाया हुआ भोजन) धीरे धीरे पचकर उसकी आयु को बढ़ानेवाला होता है— जो कि पाए हुए भोजन को मात्रा के अनुसार खाता है।"[2]

४ भोजन कैसे करें ?

१ भोजन को सत्कारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

२ भोजन को सत्कारपूर्वक खाना चाहिए।

३ बर्तन की ओर ध्यान रखते भोजन करना चाहिए।

४ एक ओर से भोजन को खाना चाहिए।

५ मात्रा के अनुसार सूप (तेमन) के साथ भोजन करना चाहिए।

६ भात को मीज मीज कर नहीं खाना चाहिए।

७ भोजन करते समय अवज्ञा के ख्याल से दूसरे का बर्तन नहीं देखना चाहिए।

८ बड़ा ग्रास (कौर) नहीं बनाना चाहिए।

९ ग्रास को गोल बनाना चाहिए।

१० ग्रास को बिना मुँह तक लाये मुख के द्वार को न खोलना चाहिए

११ भोजन करते समय सारे हाथ को मुँह में न डालना चाहिए।

१२ ग्रास पड़े मुख से बात नहीं करना चाहिए।

१३ ग्रास उछाल-उछाल कर नहीं खाना चाहिए।

१४ ग्रास को काट काटकर नहीं खाना चाहिए।

---

१ अंगुत्तर नि० ५, २, ४। २ धम्मपद १५, ८, और २३, ६।

१५ गाल को फुला फुलाकर नही खाना चाहिए।
१६ हाथ को झाड झाडकर नही खाना चाहिए।
१७ जूठ बिखेर बिखेर कर नही खाना चाहिए।
१८ जीभ को चटकार चटकार कर नही खाना चाहिए।
१९ चपचप करके नही खाना चाहिए।
२० सुडसुड करके नही खाना चाहिए।
२१ हाथ को चाट चाटकर नही खाना चाहिए।
२२ बर्तन को चाट-चाटकर नही खाना चाहिए।
२३ ओठ को चाट चाटकर नही खाना चाहिए।
२४ जूठ लगे हाथ से पानी का बर्तन नही पकडना चाहिए।
२५ जूठ लगे बर्तन के धोवन को घर म नही छोडना चाहिए।

५ शौचादि कैसे करें ?

१ निरोग रहते खडे खडे पेशाब पाखाना नही करना चाहिए।
२ नीरोग रहते हरियाली म पेशाब पाखाना नही करना चाहिए।
३ नीरोग रहते पानी मे पेशाब पाखाना नहीं करना चाहिए।
४ शौच के उपरान्त जल अवश्य ग्रहण करना चाहिए।
५ शौच करते दातौन नही करनी चाहिए।

६ उपदेश कैसे सुने ?

१ नीरोग होते हुए हाथ में छाता लेकर उपदेश नही सुनना चाहिए।
२ नीरोग होते हुए हाथ म दड लेकर उपदेश नही सुनना चाहिए।
३ नीरोग होते हुए हाथ म शस्त्र लेकर उपदेश नही सुनना चाहिए।
४ नीरोग होते हुए हाथ में आयुध लेकर उपदेश नही सुनना चाहिए
५ नीरोग होते हुए खडाऊँ पर चढे उपदेश नहीं सुनना चाहिए।
६ नीरोग होते हुए जूता पहने उपदेश नही सुनना चाहिए।
७ नीरोग होते हुए सवारी म बैठे उपदेश नही सुनना चाहिए।
८ नीरोग होते हुए शय्या में लेटे उपदेश नही सुनना चाहिए।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

धर्म की महत्ता और तीर्थ-स्थान

१ धर्म-श्रवण के फल

"भिक्षुओ! धर्म श्रवण के पाँच फल होते हैं। कौन से पाँच? (१) न सुने हुए को सुनता है, (२) सुने हुये को ठीक करता है, (३) सन्देह मिटाता है, (४) दृष्टि (धारणा) को सीधा करता है, (५) उसका चित्त प्रसन्न होता है।"[1]

२ धर्म को श्रद्धा से सुनना

"आनन्द! मेरे कहे हुए धर्म को सत्कारपूर्वक न सुनने वाले, न पाठ करने वाले, न देशना करने वाले, सुन्दर सुगन्ध रहित पुष्प के समान अफल होते हैं, किन्तु सत्कार पूर्वक (धर्म-) श्रवण करने वाले को महाफल प्राप्त होता है"

३ धर्म रक्षा करता है

"धर्म धर्म का आचरण करने वाले व्यक्ति की रक्षा करता है, धर्म का पालन सुख लाता है। धम के पालन म यह गुण है कि धम का आचरण करने वाला व्यक्ति दुर्गति को नही प्राप्त होता है।

धर्म धर्म का आचरण करने वाले याक्त की वर्षाकाल म बहुत बडे छाते की भाँत रक्षा करता है।"[2]

४ धर्मदर्शी बुद्ध को देखता है

"बस, वक्कलि! इस गन्दे शरीर को देखने से क्या लाभ? जो वक्कलि! धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है, जो मुझे देखता है, वह धम को

---

१ अगुत्तर नि० ५, १, २। २ जातक ४४७।

देखता है। वक्कलि! धर्म को देखने वाला मुझे देखता है, और मुझे देखने वाला धर्म को देखता है।"[1]

५ धर्म पकड़कर रखने के लिए नही

"भिक्षुओ! मै बेड़े की भाति पार जाने के लिए तुम्हे धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़कर रखने के लिए नही।"[2]

६. धर्मानुसार आचरण

"जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नही करते, वे उसी तरह दु ख को प्राप्त होते ह, जैसे राक्षसियों द्वारा व्यापारी। जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं, वे उसी तरह सकुशल पार पहुँच जाते हैं, जैसे अश्वबलाहक की सहायता से व्यापारी।"[3]

७ धर्म-ज्ञाता की मुक्ति

"पञ्चशिख! जो मेरे श्रावक पूरा पूरा धर्म जानते हैं, वे आस्रवों के क्षय होने से, आस्रव रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म मे स्वय जानकर, साक्षात्कार कर विहार करते हैं। और जो पूरा पूरा धर्म नही जानते, वे काम लोक के क्लेश (चित्त मल) रूपी बन्धनों के क्षय होने से देवता होते ह। जो पूरा पूरा धर्म नही जानते, उनमे कितने ही तीन बन्धनो के क्षय हो जाने से राग, द्वेष और मोह के दुर्बल हो जाने से सकृदागामी होते हैं। वह एक ही बार इस ससार में आकर दु खो का अन्त करेंगे। कितने ही फिर मार्ग से कभी गिरने वाले न होंगे, जिनकी सम्बोधित प्राप्ति नियत है, ऐसे स्रोतापन्न होते हैं।"[4]

८—धार्मिक तीर्थ स्थान

'आनन्द! श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए यह चार स्थान दर्शनीय 'सवेजनीय (वैराग्यप्रद)' हैं। कौन से चार? (१) 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुए (लुम्बिनी) यह स्थान श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए दर्शनीय और सवेजनीय हैं

---

१ संयुत्त नि० ३, २१, २, ४, ५। २ मज्झिम नि० २२। ३ जातक १९६। ४. दीघ नि० २, ६।

(२) 'यहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त किया (बुद्धगया)' यह स्थान श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए दर्शनीय और सवेजनीय है।

(३) 'यहाँ तथागत ने अनुत्तर धर्मचक्र को प्रवर्त्तन किया (सारनाथ)' यह स्थान श्रद्धालुकुलपुत्र के लिए दर्शनीय और सवेजनीय है।

(४) 'यहाँ तथागत अनुपादिशेष निर्वाण धातु को प्राप्त हुए (कुसीनारा)' यह स्थान श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए दर्शनीय और सवेजनीय है।

आनन्द ! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकाये (भविष्य में यहाँ आवेगी जो कोई आनन्द ! चैत्य का परिभ्रमण करत हुए प्रसन्न मन स काल करेंगी, वे सभी काया को छोड मरने क बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न होंगी।"[२]

९—धातु-पूजा

"चक्षुमान् का शरीर आठ द्रोण था, जिसमे सात द्रोण जम्बूद्वीप म पूजित होते हैं, और पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामगाम म नागो स पूजा जाता है। एक दाठा (दाढ) स्वग लोक म पूजित है और एक गधारपुर में पूजी जाती है। एक कलिङ्ग राजा के देश मे है और एक को नागराज पूजते हैं। उसी तेज से पट्टका की भाति यह वसु-धरा यही अलकृत है।

इस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध) का शरीर सत्कृतों द्वारा सुसत्कृत हुआ। देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्रों से पूजित तथा श्रेष्ठ मनुष्यों से पूजित हुआ उसे हाथ जोडकर वन्दना करो। सौ कल्प म भो बुद्ध होना दुर्लभ है।"[२]

"सब स्थानों मे प्रतिष्ठित शारीरिक धातु (=अस्थि) 'बोधिवृक्ष' और बुद्ध प्रतिभा—इन सब चैत्यों की मैं सदा वन्दना करता हूँ।"

— * —

२ दीघ नि० २, ३।